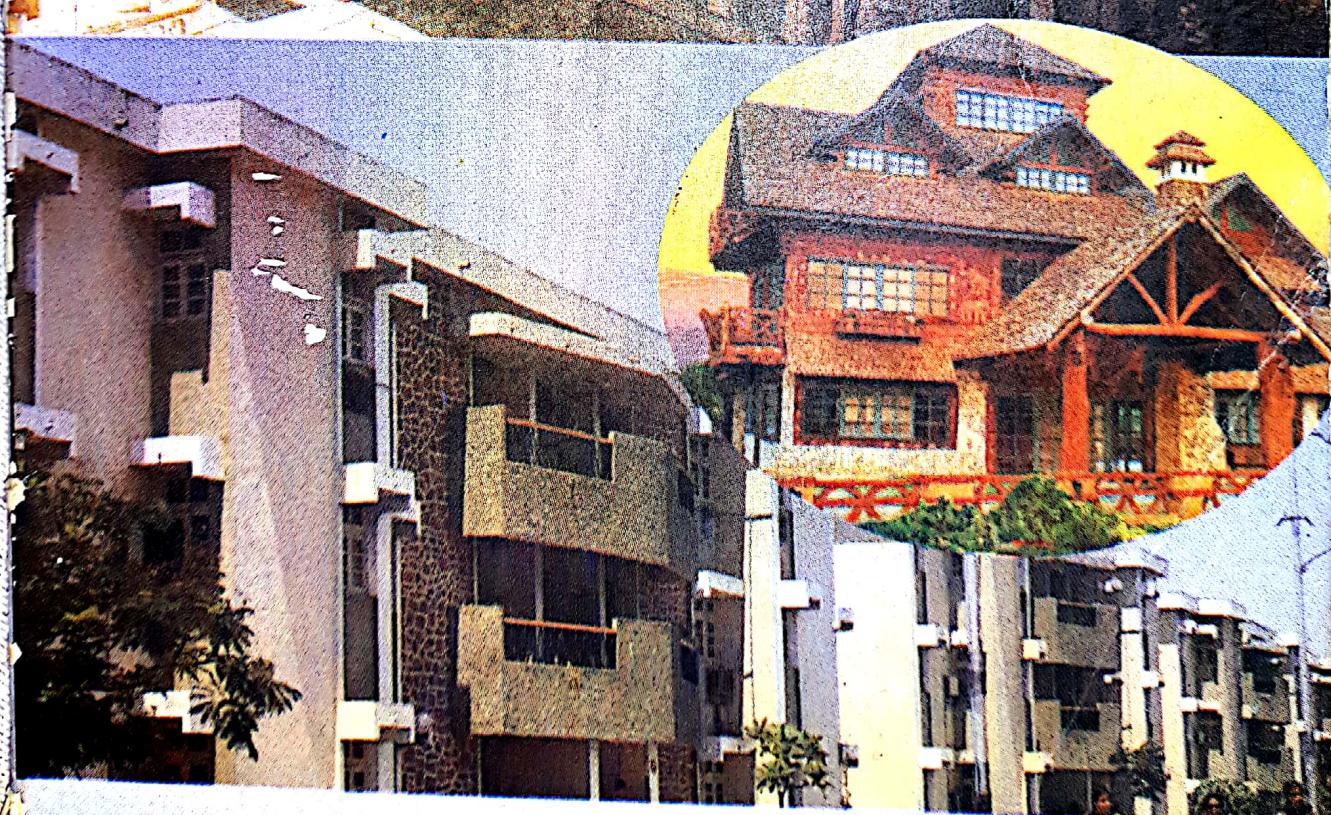
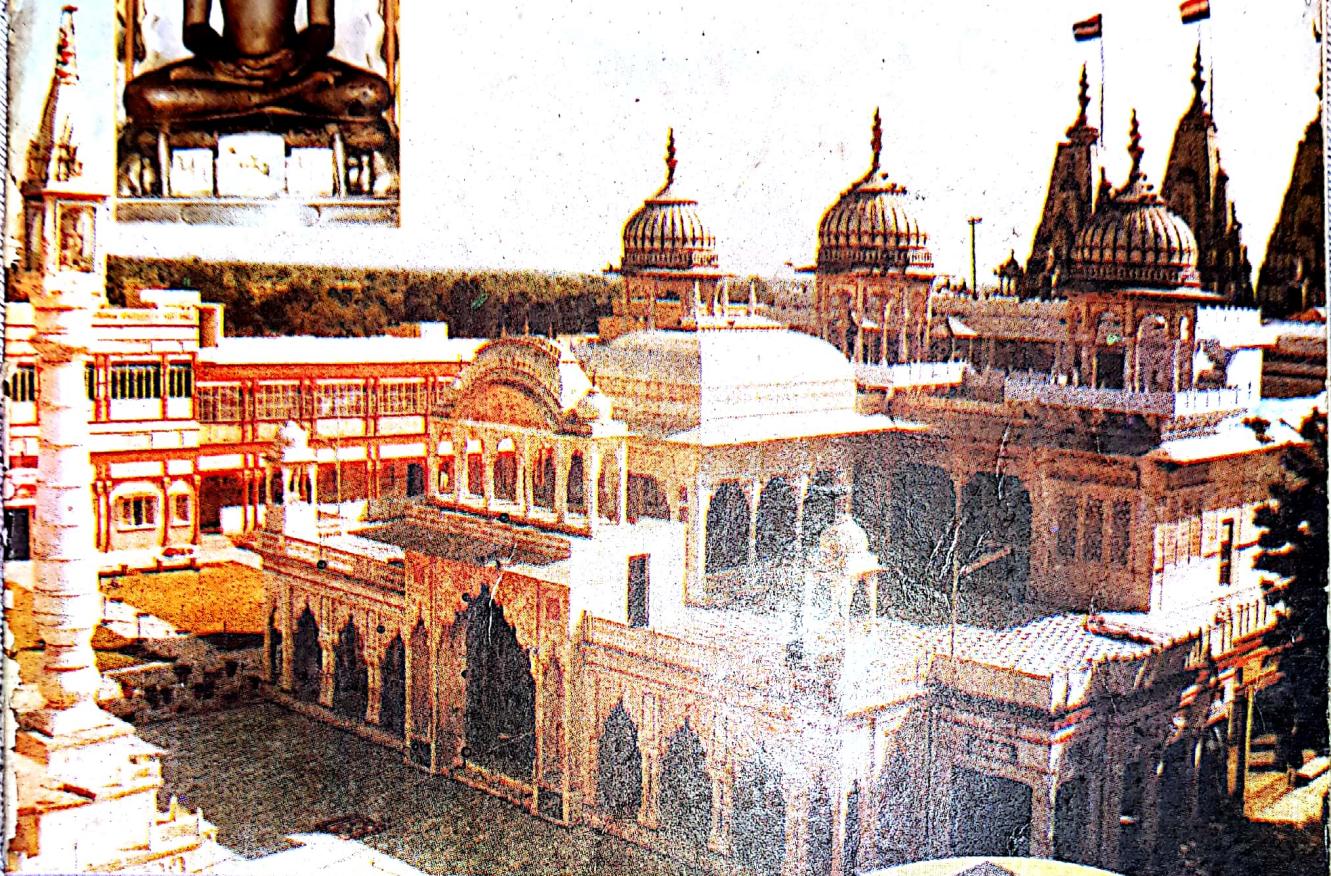


ગુસ્તુ વિજ્ઞાન

(ગૃહ, દેવાલય એવं પ્રતિમા વિજ્ઞાન)



પં. સનત કુમાર વિનોદ કુમાર જૈન

॥ श्री महाबीराय नमः ॥

प्रतिष्ठाचार्य पं. कपूरचन्द्र जैन ग्रन्थमाला पुस्त्र. 5

वास्तु विज्ञान

गृह, देवालय एवं प्रतिमा विज्ञान
(सरल एवं संक्षिप्त)



संयोजन/सम्पादन

पं. सनत कुमार विनोद कुमार जैन
रजबाँस, सागर म.प्र. 470442

फ़ : 07581 - 273211



प्रकाशक

देवेन्द्र कुमार (अजय) अभिषेक जैन (बिजली वाले)
1/6013 कबूल नगर शाहदरा दिल्ली - 32

- वास्तु विज्ञान
गृह, देवालय एवं प्रतिमा विज्ञान
(सरल एवं संक्षिप्त)
- पं. सनत कुमार विनोद कुमार जैन
रजबांस, सागर (म.प्र.) 470442
- श्री देवेन्द्र कुमार (अजय) अभियेक जैन (विजली वाले)
1/6013 कवूल नगर शाहदरा दिल्ली - 32
फ़ : 011-22594932
- प्रथम संस्करण
- मूल्य - 35/- रुपये

प्राप्ति स्थान

- | | |
|--|---|
| (1) पं. सनत कुमार विनोद कुमार जैन
रजबांस, जिला सागर म.प्र. 470442 | (4) श्री दिग्ं. जैन लाल मंदिर (साहित्य सदन)
चौदोनी चौक, दिल्ली फ़ : 9810095333 |
| (2) श्री देवेन्द्र कुमार (अजय) अभियेक जैन
(विजली वाले)
1/6013 कवूल नगर शाहदरा दिल्ली - 32
फ़ : 011-22594932, 22591815 | (5) श्री ऋषभ देव ग्रंथमाला
श्री दिग्ं. जैन संस्थी मंदिर, सांगानेर,
जयपुर (राजस्थान) फ़ : 730390 |
| (3) गुलबर विद्यासागर जीव रक्षा केन्द्र (रजि.)
1202/2 बी, वहादुरगढ़ रोड, दिल्ली - 6
फ़ : 23542125, 27479584, 31011415 | (6) संतोष कुमार जयकुमार जैन (बैटरी वाले)
कटरा बाजार, सागर फ़ : 243736 |
| | (7) श्री दिग्ं. जैन पंचवालयति मंदिर
सत्यमैन के सामने, ए.वी. रोड
इंदौर-10 फ़ : 2571851 |

- मुद्रक : जय भारत प्रिंटिंग प्रेस
वैस्ट रोहतास नगर, शाहदरा दिल्ली-32
फ़ोन : 22321013, मो. 9810211414
- लेजर कम्पोजिंग एवं आवरण सज्जा
एक्सिट्र कम्प्यूटर्स
नमकमंडी, कटरा बाजार, सागर, फ़ : 503225, Mob. 9826434225

अपनी बात

जब व्यक्ति अपने आप को दुःखी अनुभव करता है तब वह उन दुःखों को दूर करने का उपाय करता है। उसे जो भी बता दिया जाता है, वही करने को तत्पर हो जाता है। उसका लक्ष्य मात्र दुःख दूर करने का ही रहता है। हमें सर्वप्रथम दुःख के मूल कारण, पूर्व संचित अशुभ कर्मों का अभाव करना चाहिये जो बुद्धिपूर्वक नहीं किया जा सकता है। इसे मात्र विशुद्धि एवं जिन भवित के द्वारा ही दूर किया जा सकता है। हम कभी-कभी दुःख के कारणों में बाह्य कारणों पर ज्यादा ध्यान देते हैं। अन्तरंग कारण परिणामों में विशुद्धिपूर्वक बाह्य कारणों को भी दूर करना चाहिये। दुःख के मात्र बाह्य कारणों को ही दुःख का पूर्ण हेतु नहीं मान लेना चाहिये। बाह्य कारण तो मात्र निमित्त है। उसे हमें बुद्धिपूर्वक जितना हो सकें कम करना चाहिए, वाकी भवितव्यता पर छोड़ देना चाहिए। दुःख के बाह्य कारणों में एक कारण वास्तु का दोषपूर्ण होना भी है। इसके निमित्त से भी हम दुःखी हो जाते हैं। वर्तमान काल में वास्तु ज्ञान का प्रचार प्रसार बहुत तेजी से हुआ है और लोग इससे भी तेजी से उससे प्रभावित भी हुये हैं। वास्तु ज्ञान न होने के कारण, अनुचित धन खर्च करके वास्तु की तोड़-फोड़ करके अपना आर्थिक नुकसान तो कर ही लेते हैं, साथ ही मानसिक रूप से परेशान भी रहते हैं। दोष बताने वाला व्यक्ति जो भी दोष एवं उसका निराकरण बताता है, उसे पहले से भयभीत व्यक्ति बिना सोचे ही मान लेता है और अपने समय एवं धन का नुकसान करता है यदि व्यक्ति को वास्तु ज्ञान की प्रारम्भिक जानकारी हो तो उसे वास्तु विषयक भय नहीं रहेगा, उसे सब साधारण सा लगने लगेगा। अतः हमें वास्तु ज्ञान की जानकारी होना चाहिए। जानकारी के अभाव में दोषपूर्ण/मंदिर/गृह से अनेक दुःख/कलह आदि अनेक दुःख उठाने पड़ते हैं इस दृष्टि से श्री भाई योगेश कुमार जी खतीली ने हमसे कहा कि आप एक संक्षिप्त एवं सरल वास्तुज्ञान की पुस्तक प्रकाशित करें, जिसे सामान्य जन भी पढ़कर वास्तु संबंधी ज्ञान प्राप्त कर सकें। वास्तु ज्ञान के बड़े-बड़े ग्रन्थ हैं। उनकी कठिन और विस्तृत शैली आज व्यक्ति को सुग्राही नहीं है। उसके पास इन बड़े ग्रन्थों को पढ़ने का समय भी नहीं है। उसे तो संक्षिप्त और सरल वास्तुज्ञान की छोटी पुस्तक चाहिए जिसे वह सहजता से पढ़ सके। अतः हमने इस पुस्तक के सृजन के लिए अनेक वास्तु ग्रन्थों का आलोड़न कर सारभूत, उपयोगी, सरल और सुग्राही सामग्री का चयन किया है। जिससे सभी वर्ग के लोग लाभ उठा सकें।

इस पुस्तक को सरल बनाने के लिए इसे तीन खंडों में विभाजित किया है - प्रथम खण्ड में भूमिखण्ड क्रय करने की सावधानियाँ, भूमिखण्ड का आकार, भूमि परीक्षण एवं शुभाशुभ भूमि का वर्णन किया गया है। जिससे भूमिखण्ड स्वीकृते समय कोई गलती न हो सके। दूसरे खण्ड में मंदिर के वास्तुज्ञान का वर्णन किया गया है क्योंकि यदि मंदिर में कोई वस्तुदोष रहता है तो इसका प्रभाव समाज पर पड़ता है। समाज परेशान रहती है, झगड़े होते हैं और विकास नहीं हो पाता। इस खण्ड में मूर्ति विज्ञान भी समाहित किया गया है। सभी लोग प्रतिमा के नाप से परिचित हों और प्रतिमा लेते समय सावधानी रखें। तीसरे खण्ड में गृह वास्तु का वर्णन किया है। गृह के वास्तु दोषों का अत्यन्त सरलता से वर्णन किया है इन तीनों खण्डों की भाषा विन्दु रूप में दी गई है। जिससे थोड़ा पढ़कर ज्यादा ज्ञान प्राप्त किया जा सके। जो व्यक्ति विशेष वास्तु ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं उन्हें दूसरे बड़े ग्रन्थों का अध्ययन करना चाहिए।

यह पुस्तक वास्तु ज्ञान की पूर्ण पुस्तक नहीं कही जा सकती इसमें विषय को संक्षिप्त किया गया है। अतः कुछ विषय छूट भी गया होगा। उसको अन्य संदर्भित ग्रन्थों से जानकारी प्राप्त करें।

इस पुस्तक की विषयवस्तु का प्रासाद मंडन, वास्तुप्रकरण, वत्थु विज्ञा (गृह) वत्थु विज्ञा (मंदिर) वास्तु चिन्तामणि, देवशिल्प, वास्तु रत्नाकर, वास्तुरत्नावली, प्रतिष्ठा रत्नाकर एवं पुष्पांजलि आदि ग्रन्थों से संयोजन कर सरल एवं संक्षिप्त करके प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

इसे प्रतिष्ठाचार्य पं. गुलाबचन्द जी, ब्र. जयनिशान्त जी ने देखकर उचित संशोधन एवं मार्गदर्शन किया इसके लिए हम उनके हृदय से आभारी हैं। श्रीमान् मदनलाल जी बैनाडा आगरा ने इसका पूर्णतः अवलोकन कर इसे संशोधित किया एवं मेरे अनुरोध पर प्रस्तावना लिखकर हमें अनुग्रहीत किया है। उनके हम आभारी हैं।

इसका प्रकाशन धर्मरत्न, साहित्य प्रेमी, जिनवाणी सेवक श्री देवेन्द्र कुमार जी (अजय) कवूलनगर शाहदरा दिल्ली द्वारा किया गया है। उनके इस संदर्भ की हम प्रशंसा करते हैं।

जनकल्याण की भावना से लिखी गई इस पुस्तक से सभी लोग लाभ लेंगे ऐसी मंगल भावना है।

दिनांक - 1.12.03

राजवाँस - जिला सागर म.प्र.

पं. सनतकुमार विनोद कुमार जैन

प्रस्तावना

संसारी प्राणी चतुर्गति रूप संसार में परिप्रमण कर रहा है। जिसमें नरकाति एवं तिर्यकाति के जीव पूर्णरूपेण असहाय हैं। देवों की आहार आदि की क्रियाएँ एवं प्रवृत्ति नियमानुकूल-समय से होती है, निर्माण कार्य तो वहाँ होता ही नहीं, सभी अकृत्रिम व्यवस्थाएँ हैं। मनुष्यों को भी भोग भूमि में कुछ करने की आवश्यकता नहीं है, सभी आवश्यकताएँ कल्पवृक्षों से पूर्ण होती हैं। इस प्रकार कर्म भूमि का मनुष्य ही भवन एवं मंदिर निर्माण के कार्य कर सकता है।

वर्तमान समय में सूचना प्रसारण की द्वित गति के कारण प्रायः सभी पढ़े-लिखे व्यक्ति अखबार अथवा अन्य साहित्य के माध्यम से 'वास्तु' के बारे में कुछ न कुछ अवश्य जानते हैं। यहाँ तक कि यदि कोई, किसी कष्ट में होता है, तो उसके सहयोगी, उसे किसी वास्तुविद से परामर्श की सलाह देते हैं। लाभ, सुख, समृद्धि हेतु सभी प्रायः इसकी जानकारी व वास्तु-व्यावसायिक व्यक्तियों को सलाह लेते दिखाई देते हैं। वैसे वास्तु के नियमों की चर्चा लिखने बैठें तो बहुत बड़े शास्त्रों का लेखन हो सकता है। परन्तु मान्यवर पंडित सनतकुमार जी के भाव हुए कि बड़ी-बड़ी पुस्तकों को सभी जन सामान्य को समझने में कठिनाई होती है, अतः कोई ऐसी पुस्तक लिखी जाए जिससे प्रत्येक व्यक्ति अपने उपयोग लायक व्यवस्था इसमें से लेकर अपनी योजना उपयोगी बना लें।

वास्तु के कुछ प्रमुख नियमों की जानकारी तो प्रत्येक व्यक्ति को होनी चाहिए। उदाहरण के लिए घर बनाते समय चारों दिशाएँ व उन दिशाओं के अनुसार घर में कमरे, चौका (रसोई), स्नानघर, शौचालय, ध्यान स्थान आदि किस तरफ व क्यों होने चाहिए। फर्श, छत, दीवारों का रंग, दरवाजे-खिड़कियाँ आदि भी रोशनी, हवा आदि को ध्यान में रखते हुए बनने चाहिए। हमें सोते, उठते-बैठते भोजन करने व दवा आदि लेने, रखने के लिए भी दिशाओं का महत्व समझना चाहिए, जिसका हमारे दैनिक जीवन पर तुरन्त प्रभाव पड़ता है। भवन के निर्माण में धातु, लकड़ी कहाँ-कैसी लगानी है। कमरों की लम्बाई,

चौडाई, ऊँचाई कितनी हो इसका भी ध्यान रखना चाहिए। भूमि क्रय करते समय उसको भी जाँच लेना चाहिए।

मुख्य रूप से, चारों दिशाओं की विशेषताओं को भी समझना आवश्यक है। जैसे पूर्व, उत्तर व पूर्वोत्तर (ईशान) हमेशा शुभ नीजा हासिल करती हैं, जबकि दक्षिण-पश्चिम दिशाओं की तरफ होने वाले कार्यों को विपरीत फलदायक के रूप में जाना जाता है। घर, मन्दिर, दुकान आदि सभी में पूर्वोत्तर, पूर्व व उत्तर दिशाएँ खुली हुई, हल्की, ढलान वाली ही होना चाहिए, जबकि अन्य दिशाओं के लिए भारी होना, ऊँचाई वाला होना आवश्यक है। सामान रखने में भी इसका ध्यान रखा जाता है। शुद्धि के लिए भी पूर्व से उत्तर तक को पवित्र रखना भी जीवन शैली को उन्नत बनाने के लिए अति आवश्यक है। कुँआ, बावड़ी, नल-कूप आदि का स्थान भी निश्चित है। विपरीत दिशा में होने पर धन हानि, कार्य अवरोध, धन का आना रुक जाना भी देखा जाता है। स्वास्थ्य के लिए भी पूर्व-दक्षिण (आग्नेय) दिशा का बड़ा विचार करना चाहिए। आग्नेय दिशा में स्तोर्ड, हीटर, विजली मीटर, फिज, विजली मोटर, री.ची. आदि सभी लगाए जा सकते हैं। लेकिन उस दिशा में सोना अथवा बहाँ भोजन-दवा सामग्री रखने के विपरीत प्रभाव तुरन्त देखे जाते हैं। गृह वास्तु के उपयोग में ज्योतिष व मंत्र आदि को भी साथ में लेकर चलना बहुत प्रभावी बनाता है।

इन सभी वातों को प्राथमिक रूप से समझाने हेतु यह पुस्तक बहुत उपयोगी सिद्ध होगी।

इस पुस्तक के संयोजन में व उपयोगी बनाने में माननीय पंडित जी ने बहुत श्रम किया है। इनका सद्ग्रायास स्तुत्य है।

मैं दोनों पंडित भाईयों के इस प्रयास की भूरि-भूरि प्रशংসा करता हूँ। कामना करता हूँ कि यह पुस्तक जन-सामान्य के लिए उपयोगी रहते हुए स्वास्थ्य, धन लाभ अर्थित करने के साथ धर्म साधन में भी हितकारी सिद्ध हो।

दिनांक - 4.11.2003

1/205, प्रोफेसर कॉलोनी,
द्वीपपर्वत, आगरा-282002

मदनलाल जैन 'बैनाडा'

वास्तुशास्त्र

1. वास्तु विज्ञान प्रकृति व वातावरण का अध्ययन कर उनके नियमों का संकलन है।
2. वास्तु प्रकृति के नियमों के अनुकूल निर्माण का विज्ञान है जिसमें प्रकृति की पोषणकारी शक्ति प्राप्त कर मानव उत्तरोत्तर विकास करें।
3. वास्तु में व्यक्ति की प्रकृति (नैसर्गिक स्वभाव) के अनुरूप किस प्रकार, किस अनुपात में, किस दिशा में कैसा निर्माण किया जाय जो उसके विकास में सहायक हो इसका वर्णन है।
4. वास्तु, विज्ञान की वह शाखा है जो मनुष्य व उसके चारों ओर व्याप्त वातावरण का अध्ययन करती है और उसे मनुष्य की शक्ति एवं मानसिक स्थिति के अनुकूल बनाने में सहायता करती है।
5. वास्तु का परम लक्ष्य है मानव। यह विज्ञान मानव मन को शान्ति प्रदान करने वाली स्थिति का निर्माण करता है।
6. वास्तु कोई डाने या डराने वाली विधा नहीं है बल्कि यह एक ऐसा विज्ञान है जिसके माध्यम से प्राकृतिक ऊर्जाओं का अधिकतम लाभ लेकर स्वस्थ रहा जा सकता है।
7. वास्तु यानि, भूमि व भवन से जुड़ा विज्ञान। एक ऐसा विज्ञान जिससे पर्यावरण में व्याप्त ऊर्जाओं के समुचित उपयोग द्वारा सुखद व स्वस्थ जीवन के लिए विस्तृत व्याख्या मिलती है।
8. वास्तुशास्त्र प्राकृतिक नियमों पर आधारित है। प्राकृतिक शक्तियों का संतुलन इसका आधार है।
9. प्रकृति से सामंजस्य बनाकर रखना स्वस्थ एवं सुखी जीवन के लिए आवश्यक है। वास्तुशास्त्र इसी सामंजस्य को बनाने एवं बनाये रखने के बारे में दिशा दर्जन करता है।
10. वास्तु शब्द वस्तु से बना है वस्तु का अर्थ है "जो है" होता है अर्थात् जिसकी सत्ता है वही वस्तु है वस्तु से संबंधित शास्त्र ही वास्तु शास्त्र कहलाता है।

दिशा/विदिशा परिचय

पूर्व

जहाँ से सूर्योदय होता है, वह पूर्व दिशा है। यह अभ्युदय कारक है। प्रातःकाल प्राप्त होने वाली सूर्य रशियाँ मानवीय चेतना में जागृति एवं स्फूर्ति का संचालन करती है उत्साह का संवर्धन करती है मस्तिष्क को तरोताजा बनाती है। आगु आरोग्य में वृद्धि करती है। पूर्वाभिमुख दरवाजे, खिडकियाँ सूर्य की समग्र चेतना का घर में संचय करती हैं। इस दिशा की ओर मुख करके कार्य करने से सुख, धन, सम्पत्ति एवं ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है।

आनेय - पूर्व और दक्षिण दिशा के मध्य आनेय विदिशा होती है। यह स्वास्थ्य प्रदाता है। इस दिशा में रसोईघर रखा जाय तो अन्न, भोजन, मन, बुद्धि आदि शुद्ध होते हैं।

दक्षिण

✓ दक्षिण दिशा विलासिता की दिशा है। इस कारण व्यक्ति मौज़ मस्ती में उलझकर व्यसनों में पड़ जाते हैं, अन्ततः पतित होता है तथा आर्थिक, शारीरिक एवं पारिवारिक दृष्टि से वह दुःखी रहते हैं। इसलिए दक्षिण में द्वार एवं खिडकी आदि नहीं रखना चाहिए। यदि अन्य दिशाओं के साथ सन्तुलन कर इसे भारी बनाया जाय तो यह दिशा सुख, समृद्धि एवं संतोष-दायक है।

नैऋत्य - दक्षिण और पश्चिम दिशा के मध्य नैऋत्य विदिशा होती है यह दिशा ऋण शक्ति की दिशा मानी जाती है। अतः इसे भारी/वजनदार वस्तुओं से भर देना चाहिए। शुभ कार्य के लिए यह विदिशा वर्जित है। वास्तु का यह कोण ऊँचा एवं भरी होना चाहिए।

पश्चिम

जहाँ सूर्यअस्त होता है वह पश्चिम दिशा है। इस दिशा से कार्य आरंभ करना अशुभ माना जाता है। इस दिशा का प्रभाव चंचल होता है अतः घर दुकान का मुख इस दिशा की ओर होने से लक्ष्मी चंचल/अस्थिर रहती है। अन्य दिशाओं के साथ सन्तुलन कर इसे व्यवस्थित बनाया जावें तो यह प्रगति, उत्कर्ष और प्रतिष्ठा प्रदायक है।

वायव्य - पश्चिम और उत्तर के मध्य वायव्य विदिशा होती है। इस विदिशा से पूर्व की ओर हवा चलती है सभी जीवों के लिए वायु अतिआवश्यक है अतः इस विदिशा में अति ऊँचा निर्माण नहीं करना चाहिए। यह दिशा अन्य लोगों से संबंधों का नियमन करती है। जो हार्दिकता एवं आतिथ्य का निमित्त है।

उत्तर

इस दिशा का बड़ा महत्व है। इस दिशा में मुख करके विचार करने पर शंका का समाधान शीघ्र हो जाता है। चिन्तन के लिए यह दिशा श्रेष्ठ है। इस दिशा को धनात्मक ऊर्जा का विस्तार माना जाता है। दरवाजे खिडकियाँ इस दिशा में करने से विपुल धनधार्य वैभव तथा धार्मिक सम्पन्नता की प्राप्ति होती है। यह दिशा स्थिरता की द्योतक है। व्यापार को यह दिशा शुभ है।

ईशान - पूर्व तथा उत्तर दिशा के मध्य ईशान विदिशा होती है। इस विदिशा में ब्रह्मांडीय तथा चुम्बकीय धन शक्ति प्रचुर मात्रा में प्रविष्ट होती है। इस दिशा में कुआ/बाबौल या हौज रखने से शक्ति के अणु अधिक मात्रा में शोषित होकर वास्तु में प्रविष्ट होते हैं जिससे निवास करने वाले को लाभ होता है।

विषय - सूची

खण्ड - 1 वास्तु समुच्चय

1.	भूमिचयन	1
2.	सर्वा से भूमि चयन	3
3.	स्व से भूमि चयन	3
4.	गन्ध से भूमि चयन	4
5.	वर्ण से भूमि चयन	4
6.	जाति से भूमि चयन	5
7.	जल बहाव एवं दिशागत भूमि का नीचापन	5
8.	अशुभ भूमि	6
9.	पशु पक्षियों के निवास की भूमि में गृह निर्माण का फल	7
10.	आकार के आधार पर भूमि का शुभाशुभ	8
(1)	वर्गीकरण भूमि	8
(2)	लम्ब चौरस भूमि	9
(3)	विषम चतुर्भुज	10
(4)	पद्मकोण भूमि	10
(5)	गोलाकार भूमि	11
(6)	अण्डाकार भूमि	11
(7)	त्रिकोणकृति	11
(8)	अद्वं गोलाकार	12
(9)	सूपाकार	12
(10)	धनुषाकार	12
(11)	पंखाकृति	12
(12)	मृदंगाकार भूमि	13
(13)	शकटाकार भूमि	13
(14)	अटकोण भूमि	13
(15)	मूरलाकार भूमि	13
(16)	चिमटाकार भूमि	14
(17)	दोहरी स्थाकार	14
(18)	टी आकार वाली भूमि	14
(19)	काकमुखी भूमि	14
(20)	कुम्माकार भूमि	15
(21)	गामुखाकार भूमि	14
(22)	सिंहमुखाकार भूमि	15
(23)	चतुर्कोण भूमि	16

11.	भूमि परीक्षा	16
12.	भूखण्ड चयन	18
13.	कोण बढ़ने पर शुभाशुभ	18
14.	कोण घटने पर शुभाशुभ	20
15.	भुजा दोष	21
16.	भूमि का नीचे ऊँचे की अपेक्षा चयन	22
17.	मार्ग के आधार पर भूखण्ड का चयन	22
(1)	एकतरफ मार्ग वाले भूखण्ड	22
(2)	दो तरफ मार्ग वाले भूखण्ड	24
(3)	तीन तरफ मार्ग वाले भूखण्ड	26
(4)	चारों ओर मार्ग वाले भूखण्ड	28
18.	भूखण्डों का वर्गीकरण	29
(1)	उत्तम भूभाग	29
(2)	मध्यम श्रेणी के भूभाग	30
(3)	जघन्य श्रेणी के भूभाग	31
(4)	अतिजघन्य श्रेणी के भूभाग	31
19.	भूभाग पर रेखांकन निर्देश एवं शुभाशुभ	31
20.	खनन समय के शुभाशुभ	33
21.	वेधदोष	33
(1)	तल वेध दोष	33
(2)	ताल वेध दोष	34
(3)	दृष्टि वेध दोष	34
(4)	तुला वेध दोष	34
(5)	स्तम्भ वेध दोष	35
(6)	हृदय वेध दोष	35
(7)	मर्म वेध दोष	35
(8)	मार्ग वेध दोष	35
(9)	बृक्ष वेध दोष	35
(10)	छाया वेध दोष	36
(11)	द्वार वेध दोष	36
(12)	स्वर वेध दोष	36
(13)	कील वेध दोष	36
(14)	दीपालय वेध दोष	36

22.	वेध का अशुभ फल	36
23.	वेध दोष परिहार	37
24.	बीधी शूल	38
25.	शुभ बीधी शूल	38
26.	अशुभ बीधी शूल	39
27.	अशुभ गृह	40
28.	बृक्षों की अपेक्षा शुभाशुभ	43
29.	पशु पक्षियों की अपेक्षा शुभाशुभ	44
30.	शुभ संकेत	46
31.	आय	47
32.	चार	49
33.	अंग	50
34.	द्रव्य	50
35.	तिथि	50
36.	योग	50
37.	शत्य	51
38.	शत्य शोधन	51
	खण्ड - 2 गृह वास्तु	
1.	द्वार का विस्तार	54
2.	द्वार की दिशा	54
3.	द्वारों का शुभाशुभ	55
4.	खिड़कियाँ	58
5.	परकोटा	59
6.	रसोई घर	59
7.	भोजनगृह	61
8.	वैठक गृह	62
9.	तिजोरी कक्ष	63
10.	अध्ययन कक्ष	64
11.	शयन कक्ष	65
12.	आईना	67
13.	स्नान गृह	68
14.	ओपरालय	68
15.	ओपथि कक्ष	69

16.	शौचालय	69
17.	शौचकूप	69
18.	तलघर	69
19.	व्यापार के लिए तल घर	70
20.	दहलान	70
21.	सीढ़ियाँ	71
22.	विद्यालय	72
23.	दुकान	72
24.	व्यापारिक स्थलों का रंग-संयोजन	74
25.	अनुपयोगी सामग्री कक्ष	75
26.	कारखाना	76
27.	धनधान्य भंडार कक्ष	79
28.	भंडार गृह	79
29.	कुओं	79
30.	प्रसूति कक्ष	80
31.	पालतू पशुओं का निवास	80
32.	सेवकगृह	80
33.	पानी की टंकी	80
34.	वास्तु-विस्तार एवं क्रय विचार	80
35.	वास्तु किरणे पर देना	80
36.	अशुभ परिहार/अपरिहार	81
37.	विवाह मण्डप	82
38.	गृह सज्जा	83
39.	बगीचा	84

खण्ड - 3 देवालय वास्तु

1.	मंदिर वास्तु शुभाशुभ	85
2.	द्वार	88
3.	गर्भगृह	89
4.	वेदी	91
5.	मूलनायक प्रतिमा	92
6.	जिनेन्द्र देव की हृषि का विधान	94
7.	प्रतिमा विज्ञान	95
8.	कायोत्सर्ग प्रतिमा	100

9.	पदमासन प्रतिमा	101
10.	प्रतिमा मान	101
11.	प्रतिमा शुभाशुभ	102
12.	सर्वोष प्रतिमा का फल	107
13.	यंत्र	108
14.	चरण चिह्न	109
15.	पूजा करने वाले की दिशा	109
16.	शिखर	109
17.	कलश	110
18.	ध्वज एवं ध्वजदण्ड	110
19.	गृह चैत्यालय	113
20.	वस्तिका/अतिथिभवन	115
21.	निरीथिका	117
22.	स्नानगृह	117
23.	पूजन सामग्री तैयार करने का स्थान	117
24.	पैर धोने का स्थान	117
25.	कचरा रखने का स्थान	118
26.	माली/कर्मचारी कक्ष	118
27.	कार्यालय/सूचनापट	118
28.	शास्त्र भेंडार	118
29.	मंदिर में रिक्त भूमि का महत्व	119
30.	गुल भेंडार	119
31.	तल घर	120
32.	रंग संयोजन	120
33.	सीढ़ियाँ/सोपान	121
34.	पुण्य वाटिका एवं बृक्ष	121
35.	मंदिर का परकोटा	122
36.	कुंआ	122
37.	पानी की टंकी	123
38.	पंचकल्याणक पाण्डाल/मण्डप	123
39.	मानस्तम्भ	125
40.	जीर्णोद्धार	126
	संदर्भ ग्रंथ सूची	126
 130	

**खण्ड - 1****वास्तु - समुच्चय****भूमि चयन -**

1. गृह भूमि ग्राम/नगर के चारों कोनों में न हो। निम्न स्तर की (शूद्र) जातियों के आवास बन सकते हैं।
2. वैश्य का नगर के दक्षिण भाग में और शूद्र एवं वर्षा शंकरों का निवास आग्नेयादि कोणों में शुभ होता है ग्राम/नगर के कोणों में जाति च्युत और चोरों का निवास शुभ होता है।
3. पूर्वादि दिशाओं में क्रमशः ग्राहण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रों का निवास सभी दृष्टिकोणों से लाभप्रद है।
4. भवन निर्माण हेतु नगर के मध्य में उत्तम भूमि का चयन करना चाहिए।
5. चैत्य भूमि, गृहस्वामी को भय देने वाली, वांवी युक्त भूमि विपत्ति देने वाली तथा बोली, चरित्र एवं आचरण हीन मनुष्य के आवास के समीप वाली भूमि सन्तान नाशकारी भूमि कही गई है।
6. चौराहे पर मकान बनाने से कीर्ति का नाश होता है।
7. देव मन्दिर की भूमि पर घर बनाने से उद्देग होता है।
8. मंत्री के स्थान पर घर बनाने से धन हानि होती है।
9. गड्ढे में घर बनाने से घोर विपत्ति आती है।
10. जिस भूमि से मन एवं आँखों को संतोष प्राप्त हो वह भूमि श्रेष्ठ होती है।
11. जिनालय के पीछे, शिवालय के सामने, विष्णु मंदिर की दोनों भुजाओं में तथा देवी मंदिर के चारों तरफ मकान बनाना महा भयंकर, अशुभ है। अतः मंदिर की ऊँचाई से चौगुना दूर निवास शुभ होता है।
12. जिनेन्द्रदेव की दृष्टि के सामने और उनकी दायीं भुजा की ओर तथा महादेव की दायीं भुजा और उनकी पीठ की ओर बना हुआ घर कल्याणप्रद होता है, परन्तु इससे विपरीत हो तो बहुत दुःखकारक होता है।
13. घर के सामने जिनेश्वर की पीठ, सूर्य और महादेव की दृष्टि विष्णु की

- बाप्पी भुजा सब जगह चंडीदेवी और ब्रह्मा की चारों दिशा ये सब अशुभकारक हैं। इसलिए इनको अवश्य छोड़ना चाहिए।
14. गृह की ऊँचाई से दुगुनी जमीन और मन्दिर की ऊँचाई से चार गुनी जमीन छोड़ कर वेध हो तो वह दोषकारक नहीं होता है।
15. जहाँ मंदिर के ध्वज की छाया पड़ती हो वहाँ मकान बनाने से मानसिक शान्ति एवं धन का नाश होता है।
16. दिन के दूसरे और तीसरे पहर में किसी देवालय के शिखर अथवा ध्वजा आदि की ओर किसी भी वृक्ष की छाया घर में या घर के ऊपर पड़ती हो तो वहा अशुभ है, उस घर को तत्काल छोड़ देना चाहिए।
17. मकान पर मंदिर के ध्वज की छाया पड़े किन्तु बीच में राजमार्ग हो तो छाया दोष नहीं होता।
18. देवालय, प्रासाद और आश्रमादि करहीन अर्थात् दांयी, बायी ओर छोटे-बड़े होने पर महा अशुभ होते हैं।
19. राजभवन को छोड़कर शोभा हेतु भी हाथी, सिंह आदि जंगल में रहने वाले पक्षुओं एवं पक्षियों की मूर्तियाँ गृहस्थों को अपने घरों पर अथवा दरवाजों आदि पर नहीं बनवानी चाहिए। ये सब बहुत अशुभ फल देने वाली होती हैं।
20. यदि घर पूर्व दिशा की ओर ऊँचा होगा तो लक्ष्मी का नाश होगा।
21. यदि घर दक्षिण दिशा की ओर ऊँचा होगा तो धन-समृद्धियों से परिपूर्ण रहेगा।
22. यदि पश्चिम दिशा की ओर ऊँचा होगा तो धन-धान्यादि की वृद्धि होगी।
23. यदि घर उत्तर दिशा की ओर ऊँचा होगा तो ऊज़ज़ हो जाएगा।
24. द्वारहीन गृहों नेत्रों की हानि करता है, नालीहीन गृह से धन का विनाश होता है और अपद में रखे गये स्तम्भ महारोग के कारण होते हैं।
25. बापी, मण्डप और गृहों में तीन खम्मे नहीं लगाना। खम्मे सम (दो, चार, छह) शुभ होते हैं। विषम खम्मे रखने वाले शिल्पी और गृहपति दोनों महादुःखी होते हैं।

26. दो कोने वाले मकान से धननाश और गाय के मुख सद्दश वाले गृह से गृहपति का परदेश-निवास, तीन कोने वाला गृह मृत्युदायक और छह कोने वाला गृह धर्म का नाश करता है।
27. गृह की पूर्व दिशा में बड़ का, दक्षिण में ऊमर का, पश्चिम में पीपल का और उत्तर दिशा में भी पीपल का वृक्ष अशुभ नहीं होता (किन्तु दूसरे-तीसरे पहर में छाया इनकी भी नहीं पड़नी चाहिए)।

स्पर्श से भूमि चयन -

- जिस भूमि को स्पर्श करने पर गीष्म ऋतु में ठंडी एवं शीत ऋतु में गर्म तथा वर्षा ऋतु में ठंडी व गर्म दोनों तरह की ज्ञात हो वह भूमि श्रेष्ठ कही गई है।
- जो भूमि चिकनी, मुलायम तथा कंटक रहित हो वह श्रेष्ठ है।
- जिस भूमि के स्पर्श से हाथ मलिन हो जायें, धोने पर भी स्वच्छ न हों वह भूमि गृह एवं जिनालय के निर्माण योग्य नहीं है।
- अति कठोर भूमि पर वीर पुरुषों को निवास करना चाहिए। ऐसी भूमि पर शस्त्रागार सभागार, राजनैतिक कार्यालय एवं सैनिक प्रशिक्षण केन्द्र बनाना चाहिए क्योंकि ऐसी धरा से पराक्रम की ऊँजाएं सहज सुलभ होती रहती हैं।
- अति कठोर भूमि उद्योग के लिए उचित है, निवास के लिए नहीं। यहाँ श्रमिकों को बसाया जा सकता है।
- सुखदायक स्पर्श वाली भूमि गृहस्थों के लिए अति शुभ होती है। ऐसी भूमि पर देवालय, धार्मिक अनुष्ठान गृह, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय एवं साहित्यिक संस्थान बनाना चाहिए।
- कोमल भूमि व्यवसायियों और धनाढ़ी व्यक्तियों को लाभदायक होती है।

रस से भूमि चयन -

- धृत, दूध, दही एवं मिश्री के स्वाद युक्त भूमि उत्तम कही गई है।
- विषा के स्वाद वाली भूमि दूर से ही त्यागने योग्य होती है।

वास्तु विज्ञान

4

3. मीठे स्वाद वाली भूमि ब्राह्मणों के लिए, कसौले स्वाद वाली क्षत्रियों के लिए खट्टी वैश्यों के लिए चरपरे स्वाद वाली भूमि शूद्रों के योग्य कही गई है।
4. अमृत स्वाद वाली भूमि व्यवसायियों (वैश्यों) के लिए श्रेष्ठ है।
5. कड़वे स्वाद वाली भूमि पर कदापि निवास नहीं करना चाहिए। वह भूमि शृंगार के लिए छोड़ देना चाहिए।
6. खारी भूमि निर्धनता उत्पन्न करती है।

गन्ध से भूमि चयन -

1. जिस भूमि में मोगारा गुलाब एवं अन्य सुगंधित पुष्पों जैसी गन्ध आवे वह भूमि धन-धान्य एवं यजा प्रदाता कही है।
2. जिस भूमि में चन्दन की गन्ध आवे वहाँ लक्ष्मी की स्थिरता के साथ सभी प्रकार से रक्षा होती है।
3. जिस भूमि में मुर्दे एवं कर्पूर जैसी गन्ध आवे उस जमीन पर मकान एवं जिनालय बनाने से भयंकर रोगोन्त्पत्ति तथा चिन्ताओं की वृद्धि होती है।
4. जिस भूमि में धूत, दुग्ध, दही एवं सर्वोषधि जैसी गन्ध आवे वह भूमि उत्तम है।
5. विषा, वमन एवं गन्दे पदार्थों की गन्ध वाली भूमि त्यागने योग्य होती है।
6. धूत की सुगन्ध वाली भूमि ब्राह्मणों के लिए, रुधिर की गन्ध वाली भूमि क्षत्रियों के लिए, अन्न की गन्ध वाली भूमि वैश्यों के लिए तथा मंदिरों की गन्ध वाली भूमि शूद्रों के लिए उचित कही गई है।
7. हाथी के मद की गन्ध वाली भूमि क्षत्रियों के लिए श्रेष्ठ फल देती है।
8. शब्द की गन्ध वाली भूमि वैश्यों को शुभदायी होती है।

वर्ण से भूमि चयन -

1. द्वितीय वर्ण की भूमि धन धान्य एवं वैभव वृद्धिकारक कही गई है।
2. पीत वर्ण की भूमि राजकीय लाभ यजा एवं प्रतिष्ठाकारक कही गई है। यह भूमि वैश्यों को उत्तम फल प्रदान करती है।
3. श्वेत वर्ण की भूमि सभी प्रकार की उन्नति, कुरुम्ब वृद्धि तथा सुख समृद्धि कारक कही गई है।

वास्तु विज्ञान

5

4. श्याम वर्ण की भूमि मात्र शूद्रों के पक्ष में वैभव वृद्धिकारक तथा पुत्र प्राप्ति कारक कही गई है।
5. लाल वर्ण की भूमि क्षेत्र भय एवं अशान्ति कारक होती है। किन्तु क्षत्रिय वर्ण को शुभफलदायक है।
6. पाण्डु वर्ण की भूमि शान्ति सुख एवं समृद्धि कारक कही गई है।

जाति से भूमि चयन -

1. श्वेत वर्ण की भूमि ब्राह्मणों के लिए श्रेष्ठ होती है।
2. लाल वर्ण की भूमि क्षत्रियों के लिए लाभकारी होती है।
3. पीत वर्ण की भूमि वैश्यों के लिए शुभ फल देती है।
4. कृष्ण वर्ण की भूमि शूद्रों के लिए सुख देने वाली होती है।
5. जिनालय, व्यवसाय एवं धर्मशाला आदि के लिए श्वेत, पीत एवं पाण्डु वर्ण की भूमि लाभकारी होती है।
6. जिस भूमि पर कुड़ा उगे वह ब्राह्मणों को, दूर्वा उगने वाली भूमि क्षत्रियों को फल एवं पुष्पों वाली भूमि वैश्यों को एवं तृण उगने वाली भूमि शूद्रों के योग्य कही गई है।

जल बहाव एवं दिशागत भूमि का नीचापन -

1. दक्षिण, पश्चिम, नैऋत्य और वायव्य में ऊँची भूमि को गजपृष्ठ भूमि कहते हैं। इस पर निवास करने से लक्ष्मीलाभ और आयुर्वृद्धि होती है।
2. चारों ओर नीची और बीच में ऊँची भूमि को कूर्मपृष्ठ भूमि कहते हैं। इस पर निवास करने से भी प्रतिदिन उत्साह, सुख और धन-धान्य की विपुल वृद्धि होती है।
3. पूर्व, आग्नेय और ईशान दिशा में ऊँची और पश्चिम में नीची भूमि को दैत्यपृष्ठ भूमि कहते हैं। इसमें धन-जन एवं सुख-शान्ति की हानि होती है।
4. पूर्व-पश्चिम दिशा में तम्बी, उत्तर-दक्षिण में ऊँची और बीच में नीची भूमि को नागपृष्ठ भूमि कहते हैं। इस पर निवास करने वाले के उद्देश्य, मृत्युभय, स्त्री-पुत्रादि की हानि और शत्रुवृद्धि होती रहती है।

वास्तु विज्ञान

6

5. पूर्व, ईशान एवं उत्तर दिशा में नीची भूमि या जल का बहाव-गुणकारी आयु बल वृद्धि, राज सम्मान, पुत्र, भोग, व्यापार सुख वृद्धि सुख सौभाग्य एवं धर्म वृद्धि कारक होता है।
6. दक्षिण, नैऋत्य, पश्चिम, वायव्य, दिशागत भूमिका नीचापन या जल बहाव अग्निभय, शत्रुताप, नित्यक्लेश, गृह एवं धन हानि, रोग वृद्धि शोक, दाह, कुल नाश, शत्रु, भय, क्लेश, मृत्युपद, स्त्रीनाश कारक होता है।

अशुभ भूमि -

1. जिस भूमि के समीप श्मशान या कब्रिस्तान हो, जहाँ पशुओं की बलि दी जाती रही हो तथा श्मशान भूमि हो। वह भूमि निकृष्ट कही गई है।
2. जिस भूमि पर किसी की हत्या की गई हो, जहाँ नरसंहारक युद्ध हुए हों तथा जहाँ बालकों को गाड़ा जाता रहा हो, वह भूमि दुःख शोक एवं मृत्यु कारक होती है।
3. जिस भूमि के पास मदिरालय, जुआ खेलने का स्थान हो वह भूमि धन नाशक एवं मानहानि कारक होती है।
4. जिस भूमि पर दीर्घकाल तक तापसियों का निवास रहा हो वह भूमि उजाड़ लक्षण वाली कही गई है।
5. जिस भूमि पर विधवा, परित्यक्ता तथा नपुंसकों का लम्बे समय तक निवास रहा हो तथा जहाँ बहुत काल तक रुदन किया गया हो वह भूमि अवृद्धिकारक होती है।
6. जिस भूमि पर कंटीले बृक्षों का उद्भव काटने पर भी होता रहे वह भूमि क्लेश एवं शत्रुता कारक कही गई है।
7. जो भूमि नारियों के शील हरण से दूषित रही हो वहाँ किसी भी स्थिति में देवालय एवं घर का निर्माण नहीं करना चाहिए।
8. ऐसी पथरीली जमीन जिसमें दांते ऊर्ध्वमुखी हों उस जगह जिनालय धर्मशाला अर्थायतन एवं निवास नहीं बनाना चाहिए वह भूमि दरिद्रता कारक है।

वास्तु विज्ञान

7

9. जिस भूमि के सी गज निकट में बार-बार चिता जलाई जाती हो तब भी उन्हें दूर से ही त्याग देना चाहिए।
 10. उक्त भूमियाँ रूप, स्स, गन्ध, वर्ण में अनुकूल भी प्रतीत हो तब भी उन्हें दूर से ही त्याग देना चाहिए।
 11. जहाँ मंदिर का निर्माण करना हो वह भूमि शुद्ध हो, रम्य हो, स्निग्ध हो, सुगंधवाली हो, दूर्वा से आच्छादित हो, पोली एवं कीड़े मकोड़े वाली न हो, श्मशान भूमि न हो, गड्ढे वाली न हो, तथा अपने वर्ण सटश्य गन्ध वाली और स्वाद युक्त हो ऐसी भूमि मंदिर निर्माण के योग्य कही गई है।
 12. जो भूमि नदी के काटाव में हो जिसमें बड़े-बड़े पत्थर हों, जो पर्वत के अग्रभाग से मिली हो छिद्रवाली, टेढ़ी, सूपाकार, दिग्मूद, निस्तेज, मध्य में विकट रूप वाली, रुखी, बांबी युक्त, चौराहे वाली दीर्घकाय वृक्षों वाली भूमि तेज के निवास वाली तथा रेतीली भूमि हो उसे त्याग देना चाहिए।
 13. यदि भूमि पर श्मशान हो, श्मशान का मार्ग हो कीचड़ उत्पन्न करने वाली कटी-फटी दरर युक्त हो, भूमि के मध्य में नाला या नदी हो, कोयला, बाल आदि अशुभ द्रव्य पड़े हो अथवा भूमि तक जाने का मार्ग न हो ऐसी भूमि का त्याग कर देना चाहिए।
- पशु पक्षियों के निवास की भूमि में गृह निर्माण का फल -**
1. जिस भूमि पर काक एवं कछुरों का निरन्तर निवास रहता हो उस भूमि पर मंदिर एवं भवन बनाने से रोग, शोक, भय एवं मृत्यु होती है।
 2. जिस भूमि में गिर्द पक्षियों का वास हो वहाँ गृह निर्माण करने से धन हानि एवं गृह स्वामी की मृत्यु होती है।
 3. जिस स्थान पर सर्प या सर्प की बांबियाँ हो वहाँ निर्माण अशुभकारी कहा गया है।
 4. जिस स्थान पर हमेशा पतंगे उड़ते रहते हैं वह भूमि अशान्ति कारक कही गई है।

वास्तु विज्ञान

8

5. जिस भूमि पर गर्दभों एवं श्वानों का निवास दीर्घकाल तक रहा हो वह भूमि क्लेशकारी एवं शून्य कही गई है।
6. जिस भूमि में नेवले रहते हो वह भूमि उत्तम कही गई है।
7. जिस भूमि पर संध्या के समय कौवे आकर चोंच मारते हो वह भूमि धन एवं वैभव प्राप्ति कारक कही गई है।
8. जिस भूमि पर मोर आकर पाँव से जमीन खोदते रहते हों उस भूमि पर गृह निर्माण करने से स्वर्ण रजतादि अतुल धन का लाभ होता है।
9. जिस भूमि पर राजहंस आया करते हो वह भूमि राज्य सुखकारी कही गई है।
10. जिस भूमि में नेवला, खरगोश रहते हो वह भूमि उत्तम है। वहाँ पराक्रमी पुत्रों की प्राप्ति होती है।
11. जिस भूमि पर लोमड़ी, सियार, आदि प्राणी रहते हों वह भूमि अशुभ है वहाँ दरिद्रता आती है।
12. जिस भूमि पर शेर, बाघ आदि बन्य प्राणी रहते हो वह त्याज्य है वहाँ आसुरी वृत्ति आती है।
13. दीमक वाली भूमि पर भवन निर्माण करने से व्याधियां आतीं हैं।
14. फटी हुई जमीन पर निर्माण किया गया घर मृत्युकारक है।
15. जमीन में हड्डी आदि शल्य दुर्ख उत्पन्न करती है।

आकार के आधार पर भूमि का शुभाशुभ -

1. वर्गाकार भूमि - जिस भूमि की चारों भुजाएँ समान हों अर्थात् समान माप की हों वह भूमि सुमंगला कहलाती है ऐसी भूमि सदा सुख देने वाली और उन्नति करने वाली होती है।

उत्तर

पश्चिम

पूर्व

दक्षिण

वास्तु विज्ञान

9

2. लम्ब चौरस भूमि - जिस भूमि की दो भुजाएँ लम्बी हो और दो भुजाएँ चौड़ी हो किन्तु विस्तार लम्बाई से आधा हो। जिसका प्रत्येक कोण 90 डिग्री का हो वह भूमि शुभ होती है।

उत्तर

पश्चिम

पूर्व

दक्षिण

इस लम्ब चौरस भूमि का उत्तर-दक्षिण विस्तार अधिक है और पूर्व पश्चिम विस्तार कम है। अतः यह चन्द्र वेदी है जो अति शुभ है।

3. लम्ब चौरस भूमि - इस भूमि को नाग पृष्ठा भूमि भी कहते हैं। लम्ब चौरस भूमि शुभ होती है किन्तु इस भूमि का पूर्व पश्चिम विस्तार करने वालों को सुख शान्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती है। यह भूमि गृह स्वामी का क्षय करने वाली, जनहानि, मानहानि, धनहानि और शत्रु वृद्धि करने वाली है।

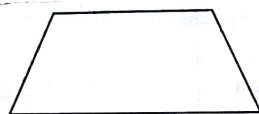
उत्तर

पश्चिम

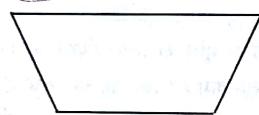
पूर्व

दक्षिण

4. विषम चतुर्भज भूमि - जिस भूमि की मुखभुजा लम्बी हो और पृष्ठ भुजा छोटी हो वह विषम चतुर्भज भूमि कहलाती है। यह भूमि व्यावसायिक केन्द्र एवं वाणिज्य संस्थान की स्थापना के लिए तो श्रेष्ठ है किन्तु गृह बनाकर निवास करने वालों को कष्टदायिनी, बंश को नष्ट करने वाली अशुभ है।



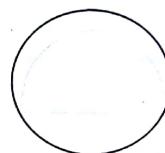
5. विषम चतुर्भज भूमि - जिस भूमि की मुखभुज छोटी और पृष्ठ भुजा बड़ी हो तो वह विषम चतुर्भज भूमि है। ऐसी भूमि से सुख सम्पत्ति एवं यश में निरन्तर वृद्धि होती है।



6. षटकोण भूमि - षटकोण भूमि के छह कोने होते हैं यह भूमि सतत दुःख/क्लेश देने वाली है।



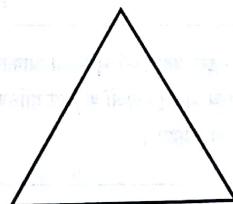
7. गोलाकार भूमि - गोलाकार भूमि गृह स्वामी को सुख शान्ति प्रदान करती है।



8. अण्डाकार भूमि - यदि भूमि अण्डाकार है तो अशुभ है किन्तु यदि मध्य में अण्डाकार उल्लंघन है और सर्व दिशाओं में अवनत है तो गृहपति को अनेक प्रकार के वैभव प्रदान करती है।



9. त्रिकोणाकृति भूमि - यह भूमि अत्यन्त अशुभ है। राजभय, कानूनी झंझट आदि अनेक संकटों का सामना करना पड़ता है।



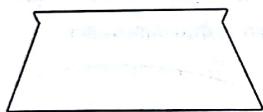
वास्तु विज्ञान

12

10. अर्ध गोलाकार भूमि - अर्ध गोलाकार भूमि अशुभ होती है। सदैव ज्ञान-मान की हानि की शंका रहती है।



11. सूपाकार भूमि - आगे का हिस्सा चौड़ा होता है तथा बाजू के हिस्सा अन्दर की ओर धसते जाते हैं ऐसी भूमि दरिद्रता को करने वाली होती है।



12. धनुषाकार भूमि - जो भूमि धनुष के आकार की होती है यह पीछे से लम्बी तथा आगे से कटावदार अन्दर की ओर धौंसी हुई होती है। ऐसी भूमि सर्वदा त्याज्य होती है।



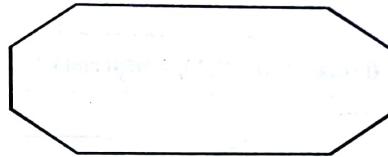
13. पंखाकृति भूमि - इस प्रकार की भूमि का आकार हाथ पंखे की तरह होता है। यह धन एवं पालतू पशुओं के लिए हानिकारक होती है। ऐसी भूमि का त्याग करना चाहिए।



वास्तु विज्ञान

13

14. मृदंगाकार भूमि - ढोलक के आकार वाली भूमि को मृदंगाकार भूमि कहते हैं। यह नारियों के लिए अनिष्टकारी एवं गृह स्वामी को अकाल मरण का कारण होती है।



15. शकटाकार भूमि - शकट अर्थात बैलगाड़ी की आकृति जैसी लगने वाली भूमि को शकटाकार भूमि कहते हैं। इसका एक हिस्सा त्रिभुजाकार होता है अतः अशुभ होता है।



16. अष्टकोण भूमि - आठ कोनों वाली भूमि को अष्टकोण भूमि कहते हैं। यह मन में सुख शान्ति करने वाली होती है।



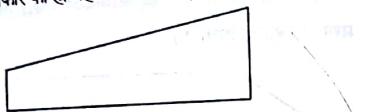
17. मूसलाकार भूमि - मूसल की आकार वाली भूमि को मूसलाकार भूमि कहते हैं। यह अशुभ होती है।



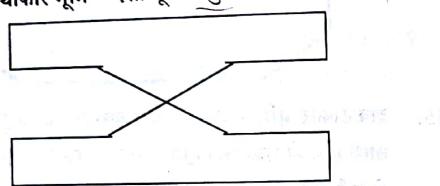
14

वास्तु विज्ञान

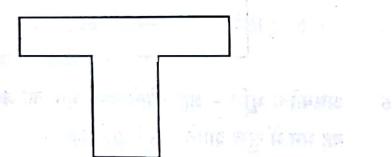
18. चिमटाकार भूमि - जो भूमि एक ओर छोटी और दूसरी ओर बड़ी अर्थात् चिमटा के आकार की हो वह चिमटाकार भूमि है। यह अनिष्टकारी होती है।



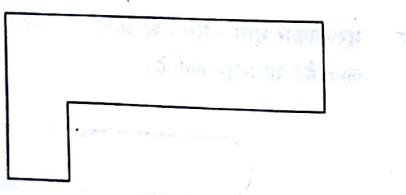
19. दोहरी रथाकार भूमि - ऐसी भूमि अशुभ होती है।



- ✓ 20. टी आकार वाली भूमि - अंग्रेजी वर्णमाला के T के आकार वाली भूमि आगे की ओर चौड़ा और भीतरी भाग संकरा होता है अतः अशुभ है।



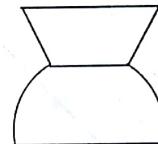
- ✓ 21. काकमुखी भूमि - कौआ के मुख समान आकार वाली भूमि काक मुखी भूमि कहलाती है यह आगे की ओर सकरी तथा पार्श्व भाग में चौड़ी रहती है यह अत्यन्त शुभ है।



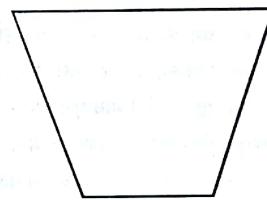
वास्तु विज्ञान

15

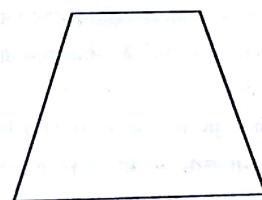
22. कुम्भाकार भूमि - यह भूमि घड़े की आधी आकृति जैसी होती है यह आगे की ओर अधिक संकरी, पीछे काफी फैली तथा दांयी और बांयी तरफ से धनुपाकार होती है यह भूमि चर्मरोग/कुष्ट रोग उत्पन्न करती है।



23. गोमुखाकार भूमि - गाय के मुख के आकार के समान भूमि गोमुखाकार भूमि कहलाती है यह भूमि आगे कम चौड़ी तथा पीछे अधिक चौड़ी होती है। निवास के लिए शुभ है।



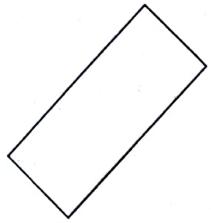
24. सिंह मुखाकार भूमि - शेर के मुँह के आकार वाली भूमि सिंहमुखाकार भूमि कहलाती है यह भूमि सामने चौड़ी और पीछे कम चौड़ी होती है। यह व्यापार के लिए शुभ होती है।



वास्तु विज्ञान

16

25. चतुर्भुज भूमि - जिस भूमि के आमने-सामने के कोण समान हों उसे चतुर्भुज भूमि कहते हैं। यह सुख शान्ति देने वाली होती है।



26. टेढ़ी मेडी भुजाओं वाली भूमि अशुभ होती है।

27. विदीर्ण, यत्र तत्र फटी हुई भूमि एवं मल से व्याप्त भूमि अत्यन्त अशुभ होती है।

भूमि परीक्षा -

1. जिस भूमि पर भवन निर्माण करना है उस भूमि के मध्य में 24 अंगुल लम्बा तथा इतना ही चौड़ा एवं गहरा गड्ढा खोदें। उससे निकली हुई मिट्ठी पुनः उसी गड्ढे में भरें। यदि पूरा गड्ढा भरने के उपरान्त भी मिट्ठी शेष रहे तो वह भूमि स्वामी के लिए उत्तम फल दायी जानना चाहिए। यदि वह मिट्ठी सम रहे अर्थात् न घटे और न बड़े तब भवन निर्माण कर्ता को मध्यम फलदायी होती है। यदि वह मिट्ठी उसी गड्ढे में भरने पर कम पढ़ जाये तब उस भूमि का फल अधम समझना चाहिए।
2. 24 अंगुल लंबे, चौड़े एवं गहरे गड्ढे में लबालब जल भर दे तथा तुरन्त 100 कदम जाकर वापिस लौट कर देखे, यदि गड्ढे में जल एक अंगुल कम हो जाये तो उत्तम फलदायी होती है। दो अंगुल जल कम हो जाये तो मध्यम फलदायी होती है। तीन अंगुल जल कम हो जाये तो अधम फलदायी होती है।
3. निर्माण योग्य भूमि में संध्या के समय एक हाथ गहरा, लंबा एवं चौड़ा गड्ढा करें तथा उसमें जल भर देवें। प्रातः काल उसमें जल शेष रहे तो

वास्तु विज्ञान

17

1. शुभ, निर्जल गड्ढा दिखे तो मध्यम एवं निर्जल व फटा हुआ दिखे तो अशुभ जानना चाहिए।
2. निर्माण योग्य भूमि में एक हाथ गहरा, लम्बा और चौड़ा गड्ढा खोदे संध्या समय उसमें कुछ फूल डालें ऊपर से उसमें जल भर दें। यदि जल डालने पर फूल तैने लगे तो भूमि उत्तम और न तैरे तो अशुभ समझना चाहिए।
3. निर्माण योग्य सम्पूर्ण भूमि में यव, तिल, अथवा सरसों को बो दे, यदि वे बीज तीन रात्रि में अंकुरित होकर ऊपर आवें तो भूमि श्रेष्ठ, यदि पांच रात्रि में अंकुरित होवे तो मध्यम तथा सात रात्रि में अंकुरित होवें तो भूमि अशुभ समझें।
4. भूमि की बारीक मिट्ठी लेकर आकाश में फेंके यदि मिट्ठी के कण तत्समय ऊपर की ओर जावें तो श्रेष्ठ, बीच में स्थिर रहे तों मध्यम यदि तत्काल नीचे आवें तो अधम बुद्धि दायक भूमि समझना चाहिए।
5. संध्या के समय थोड़ी जमीन के चारों ओर परकोटे की भाँति चटाई बांध दे ताकि उसमें हवा का प्रवेश न हो सके। उपरान्त उस जमीन पर 30 हूँ फट इस मंत्र को लिखे एवं मंत्र पर मिट्ठी का कच्चा घड़ा रख कर उस पर कच्ची मिट्ठी का दीपक रखे उसे धी से पूरा भरकर पूर्व में सफेद, दक्षिण में लाल, पश्चिम में पीली एवं उत्तर में कालीबाती बनाकर दीप में रखकर बृहद् शान्ति मंत्र से मंत्रित कर उहें जला देवे। यदि ये बत्तियाँ धी समाप्त होने तक जलती रहे तो शुभ और धी समाप्त होने के पूर्व बुझती सी लगें तो अशुभ समझना चाहिए।
6. निर्माण योग्य भूमि में एक हाथ गहरा गड्ढा खोदकर नीचे की भूमि को अच्छी तरह देखे यदि स्वर्ण के समान कण दिखाई दे तो धन हानि, कोयले या कोयले के समान पत्थर के काले कण दिखाई दे तो राज्यमय, अकाल मरण, मनसदा अतुप्त रहता है। सिन्दूर के समान वर्ण वाले कण दिखाई दें तो यशकीर्ति नाशक, अप्रक जैसे कण दिखाई दें तो अग्निभय व मन परिताप कारक, तांबे जैसे कण दिखाई दें तो उस भूमि

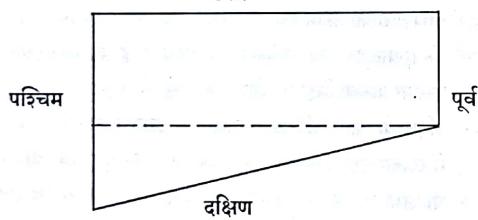
वास्तु विज्ञान

- का आवास एवं जिनालय धन धान्य की वृद्धि तथा परिवार की चाहुँमुखी वृद्धि में सहायक होता है यदि काँच कणों से युक्त भूमि हो तो सामान्य है और यदि हड्डियों के कणों से युक्त भूमि हो तो उसका परित्याग कर देना ही श्रेष्ठ है।
9. भूमि में उगे पौधे ताकत लगाये बिना ही जड़ सहित उखड़ जाये तो भूमि अशुभ है। थोड़ी कोशिश करने पर जड़ सहित उखड़े तो सम जानना और यदि ताकत लगाने के बाद भी पौधे जड़ सहित न उखड़े तथा बीच में ही टूट जावे तो वह भूमि उत्तम है।

भूखण्ड चयन -

- कोणों के आधार से भूखण्ड का शुभाशुभ कोण बढ़ने पर शुभाशुभ
- जिस भू भाग के आननेय कोण में दक्षिण तथा पश्चिम दिशाओं में विस्तार हो वह भू भाग दुःखदायक होता है।

उत्तर



- जिस भूखण्ड के नैऋत्य कोण में दक्षिण और पश्चिम दोनों दिशाओं में विस्तार हो वह भूखण्ड अनिष्टकारी होता है।

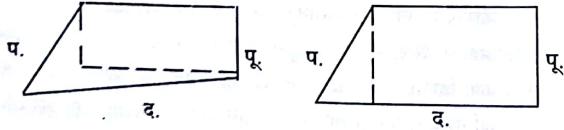
उ.

उ.

- यदि किसी भू भाग का पूर्व से दक्षिण की ओर का भाग बढ़ा हुआ हो तो वह भू भाग हानिप्रद होता है।

उ.

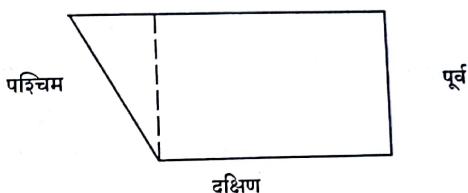
उ.



वास्तु विज्ञान

- जिस भूभाग के वायव्य कोण में पश्चिम व उत्तर दोनों दिशाओं की ओर विस्तार हो वह भूभाग अनिष्टकारी होता है।

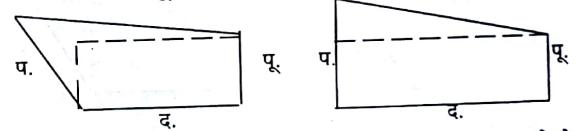
उत्तर



दक्षिण

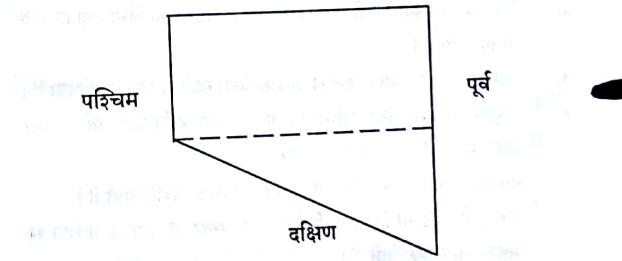
- जिस भूखण्ड के उत्तर पश्चिम कोण में बढ़ोत्तरी हो वह भूभाग हानिकारक होता है।

उ.



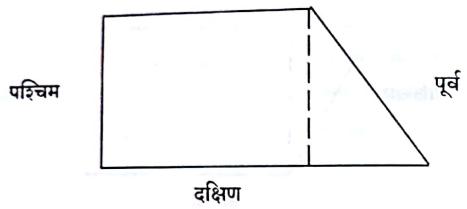
- यदि किसी भू भाग का पूर्व से दक्षिण की ओर का भाग बढ़ा हुआ हो तो वह भू भाग हानिप्रद होता है।

उत्तर



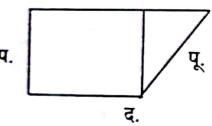
6. जिस भूभाग का दक्षिण से पूर्व की ओर का भाग बढ़ा हो वह भूभाग परेशानी वाला होता है।

उत्तर

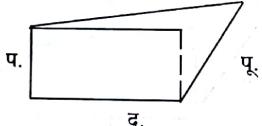


7. जिस भूखण्ड के उत्तर-पूर्व दिशाओं में ईशान कोण के क्षेत्र में बढ़ा होने पर अत्यन्त लाभकारी होता है।

उ.



उ.



2. कोण घटने पर शुभाशुभ -

- ईशान दिशा का कोना कटा रहना/अभाव होना या अन्दर धौंसा रहना सुख समृद्धि एवं वंश नाश का हेतु बनता है।
- पूर्व दिशा का कोना नहीं रहने से परिवार में शान्ति का अभाव होकर रोज कलह रहती है।
- आन्मय का कोना नहीं रहने से अथवा धौंसा रहने से शुभ फल होता है।
- नैऋत्य दिशा में कोना न होना या धौंसा होने से हानि नहीं होती व्यापार ठीक चलता है तथा शुभ फल मिलता है।
- वायव्य कोण न होना या धौंसा रहने से अर्थिक संकट आते हैं।
- वास्तु की कोई भी दिशा या विदिशा का अन्दर की ओर धौंसा रहने से अनेकों लाभ लक जाते हैं।



- यदि जमीन और परकोटा समानान्तर है किन्तु मुख्य वास्तु दिशाओं के समानान्तर नहीं होगी या वास्तु के कोने विदिशाओं की ओर मुख कर बने होंगे तो वह वास्तु अयोग्य होता है तथा निरन्तर उपद्रव होते रहते हैं।
- जमीन और परकोटा समानान्तर न रहने पर यदि मात्र वास्तु समानान्तर हो तो उसे भी अयोग्य समझा जाता है ऐसे वास्तु निर्माणकर्ता को स्थिरता नहीं रहती।
- भूमि की पूर्व दिशा की भूमि या वास्तु कटी होने पर गृह स्वामी की शक्ति क्षीण होती है तथा अपमान होता है।
- दक्षिण दिशा की जमीन कम होने पर भी शुभ होती है।
- पश्चिम दिशा की भूमि या वास्तु कम होने पर मध्यम फल होता है।
- उत्तर दिशा की भूमि या वास्तु कम होने पर धननाश होता है।
- पूर्व दिशा की ओर जमीन या वास्तु निर्माण का भाग बढ़ा/अधिक हो तो कीर्ति प्रतिष्ठा मिलती है किन्तु वंशवृद्धि की वृष्टि से हानिकारक है।
- दक्षिण दिशा की ओर भूमियां वास्तु निर्माण का भाग बढ़ा/अधिक हो तो दरिद्रता का आगमन होता है।
- उत्तर दिशा की ओर भूमियां वास्तु निर्माण का भाग बढ़ा/अधिक हो (वाहर की ओर निकला हो तो धन धान्य वृद्धि होती है किन्तु वंशवृद्धि बाधित होती है।)
- पश्चिम दिशा की ओर जमीन या वास्तु निर्माण अधिक होने की स्थिति में ऐश्वर्य का नाश होता है।

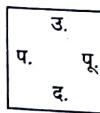
मुजा दोष -

- देवालय, प्रासाद, आश्रम, मठ आदि वास्तु कर हीन अर्थात् दायें बायें और छोटे-बड़े होना अशुभ हैं ऐसा होने से स्त्री नाश, शोक, संताप एवं गृहस्वामी का धन नाश होता है।
- यदि घर बांयी ओर बढ़ा तथा दाहिनी ओर छोटा हो तो ऐसा घर अन्तक गृह कहलाता है तथा कुल एवं सम्पत्ति का नाश करके होने से अशुभ है।

3. घर के दोनों भाग सम पार्श्व होना चाहिए। यदि दाहिनी ओर बड़ा हो तथा उसमें ज्येष्ठ भाता रहता हो तो दोष नहीं रहता।

भूमि का नीचे ऊंचे की अपेक्षा चयन -

- जो भूमि पूर्व में नीची और पश्चिम में ऊँची हो वह शुभ होती है।
 - जो भूमि पूर्व में ऊँची और पश्चिम में नीची हो वह अशुभ होती है। सन्ताति नाशक होती है।
 - जो भूमि उत्तर में ऊँची और दक्षिण में नीची हो वह महा अशुभ होती है।
 - जो भूमि उत्तर में नीची और दक्षिण में ऊँची हो वह अतुल वैभवदात्री होती है।
 - मध्य में नीची भूमि अत्यन्त अशुभ है।
 - जो भूमि ईशान में ऊँची और नैऋत्य में नीची हो वह विषये जीवों का भय उत्पन्न करती है।
 - जो भूमि वायव्य में ऊँची और आगेय कोण में नीची हो वह अग्नि भय उत्पन्न करती है।
 - जो भूमि ईशान में नीची और नैऋत्य ऊँची हो वह निरन्तर विकास करती है।
 - जो भूमि आगेय कोण में ऊँची और वायव्य में नीची हो वह सुख और सौभाग्य प्रदान करती है।
3. मार्ग के आधार पर भूखण्ड का चयन -
- एक तरफ मार्ग वाले भूखण्ड -
 - जिस भूखण्ड के एक तरफ अर्थात् पूर्व की ओर मार्ग हो वह भूखण्ड शुभ फलदायी होता है।



2. जिस भूभाग की उत्तर दिशा में मार्ग हो वह शुभ फलदायी होता है।

मार्ग

उ.

प.

पू.

द.

3. जिस भूखण्ड की दक्षिण दिशा में मार्ग हो वह सामान्य फल देता है। स्त्रियों से संबंधी वस्तुओं के व्यवसाय और पुरुषों के मनोरंजन संबंधित वस्तुओं के व्यवसाय में लाभ होता है।

उ.

प.

पू.

द.

मार्ग

4. जिस भू भाग की पश्चिम दिशा में मार्ग हो वह सामान्य फल देता है व्यापार में प्रगति होती है किन्तु धीरे-धीरे समाप्त हो जाती है।

उ.

मा

पू.

द.

मार्ग

ग

र्ग

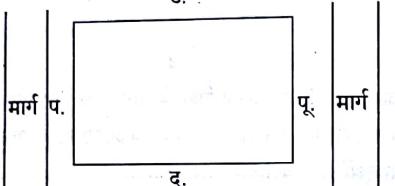
मा

वास्तु विज्ञान

24

2. दो तरफ मार्ग वाले भूखण्ड -
1. जिस भूभाग के पूर्व-पश्चिम में मार्ग हो वह गृह स्वामी को मिला, जुला फल देने वाले होते हैं।

उ.

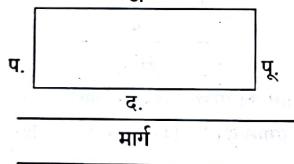


द.

2. जिस भूखण्ड के उत्तर-दक्षिण में मार्ग हो वह मिश्रित फल देने वाला होता है।

मार्ग

उ.

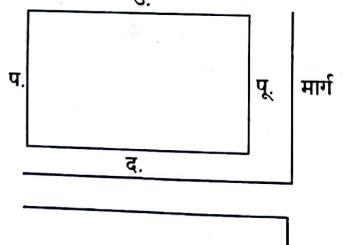


द.

मार्ग

3. जिस भूखण्ड के पूर्व-दक्षिण में मार्ग हो वह अनिष्टकारी होता है मतान्तर से शुभ भी है।

उ.



द.

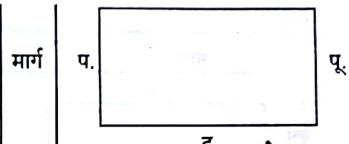
वास्तु विज्ञान

25

वास्तु विज्ञान

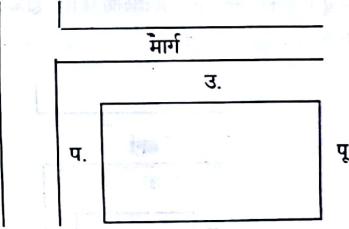
4. जिस भूभाग पर दक्षिण-पश्चिम मार्ग हो वह सामान्य फलदायी होता है। मध्य स्तर का जीवन गुजारते हैं।

उ.



पू.

5. जिस भूभाग के उत्तर-पश्चिम में मार्ग हो वहाँ लोग मध्य स्तर का जीवन गुजारते हैं।

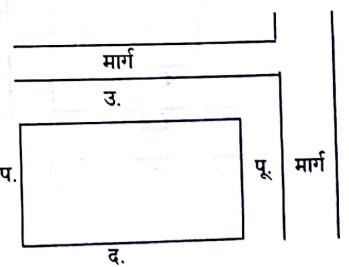


उ.

पू.

द.

6. जिस भूखण्ड की उत्तर पूर्व दिशा में मार्ग हो वह सुख और समृद्धि देने वाला होता है।



उ.

पू.

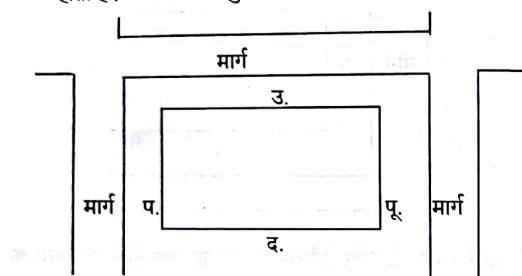
मार्ग

द.

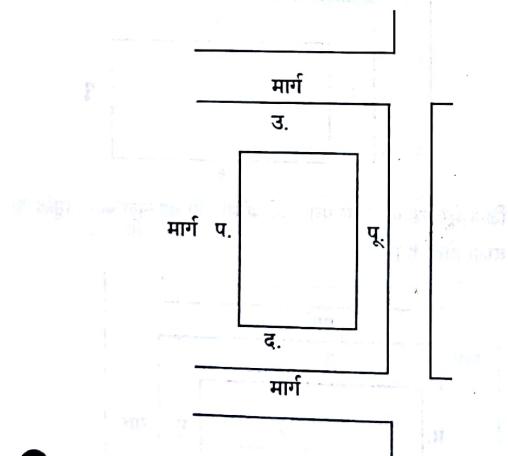


वास्तु विज्ञान

3. तीन तरफ मार्ग वाले भूभाग -
 1. जिस भूभाग की पूर्व, उत्तर और पश्चिम दिशा में मार्ग हो वह मंगलकारी होता है। मतान्तर से अशुभ भी होते हैं।

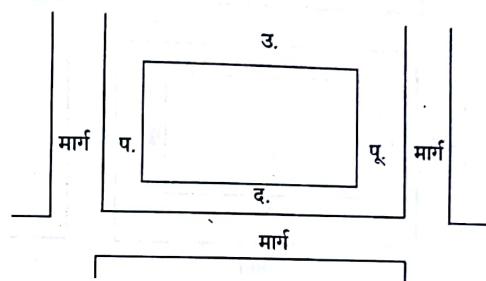


2. जिस भूभाग की उत्तर-पूर्व एवं दक्षिण में मार्ग हो वह लाभप्रद होता है। मतान्तर से अशुभ भी होता है।

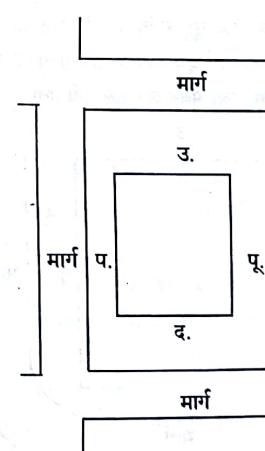


वास्तु विज्ञान

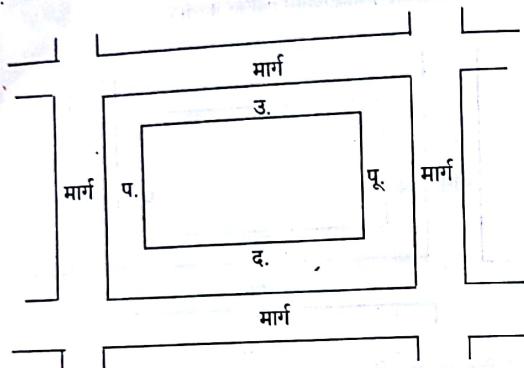
3. जिस भूखण्ड की पूर्व-पश्चिम और दक्षिण दिशा में मार्ग है वे भूखण्ड अनिष्ट होते हैं। यदि स्त्रियाँ व्यापार करती हैं तो शुभ है।



4. जिस भूखण्ड की उत्तर दक्षिण और पश्चिम में मार्ग होता है वह भूखण्ड सौभाग्य सूचक होता है।



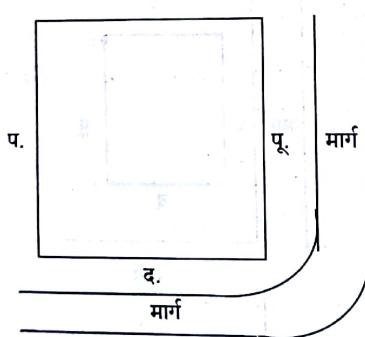
4. चारों ओर मार्ग वाले भूखण्ड -



जिस भूखण्ड के चारों ओर मार्ग हो वह अत्यन्त शुभ फल दायक होता है।

5. किसी भी मंदिर भवन एवं गृह के किसी भी दिशा के कोण की अर्ध परिक्रमा देता हुआ जो मार्ग घूम जाता है उसे वृत्ताकार भाग कहते हैं ऐसे स्थान पर बनाया हुआ भवन शुभफल नहीं देता।

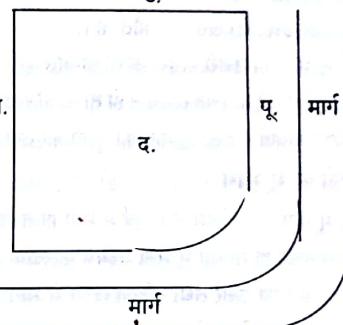
उत्तर



वास्तु विज्ञान

6. घुमावदार मार्ग पर यदि गृह का कोई भी कोना गोल बना दिया जावेगा तो वह और भी अशुभ होता है।

7. उत्तर विज्ञान के अनुसार गोल कोना अशुभ होता है।



भूखण्डों का वर्गीकरण -

भवन निर्माण करने के उद्देश्य से चयनित भूखण्डों को चार श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है।

1. उत्तम 2. मध्यम 3. जघन्य 4. अतिजघन्य

उत्तम भूभाग -

- जिस भूभाग की चारों दिशाओं में मार्ग हो एवं पूर्व उत्तरी मार्ग, दक्षिण एवं पश्चिमी मार्ग से नीचा हो एवं ईशान कोण विस्तारीकृत हो वह भूभाग श्रेष्ठ होता है।
- जिस भूभाग के पूर्व पश्चिम और उत्तर में मार्ग हो एवं पश्चिम की सड़क पूर्व और उत्तर की सड़क से ऊँची हो एवं पश्चिम में बहु मंजिल इमारत हो वह भूभाग भी श्रेष्ठ होता है।
- जिस भूभाग की पश्चिम एवं उत्तर में मार्ग हो एवं पश्चिमी वायव्य में मार्गारम्भ हो वह भूभाग भी श्रेष्ठ होता है।
- जिस भूखण्ड के पूर्व एवं उत्तर में सड़क हो और ईशान दिशा में मार्ग

- प्रारम्भ होता हो एवं पूर्व और उत्तर की सड़क भूखण्ड से ऊँची न हो। वह भूखण्ड भी श्रेष्ठ होता है।
5. जिस भूखण्ड में पूर्वी भाग ऊँचा हो और उत्तरी मार्ग नीचा हो तो प्रवेश द्वार उत्तर में रखना श्रेष्ठ होता है।
 6. जिस भू भाग की उत्तरी सड़क ऊँची हो और पूर्वी सड़क नीची हो तो प्रवेश पूर्व में रखे यदि यह संभव न हो तो ऊँची सड़क की तरफ ही मार्ग (प्रवेश) बनाना पड़े तो भू भाग का पुराव कर उसे ऊँचा करें।

मध्यम श्रेणी के भू भाग -

1. जिस भू भाग की पश्चिम तथा पूर्व में मार्ग हो तथा पूर्वी मार्ग पश्चिमी मार्ग से नीचा हो तो वह भू भाग मध्यम फलदायी होता है।
2. जिस भूभाग की उत्तर तथा दक्षिण दिशा में मार्ग हो और उत्तरी मार्ग दक्षिणी मार्ग से नीचा हो वह भूभाग मध्यम फलदायी कहा गया है।
3. जिस भूभाग के पूर्व में मार्ग हो जो भूभाग से नीचा हो तथा पश्चिम और दक्षिण में बहुमंजिल इमारत हो। वह भूभाग मध्यम श्रेणी का होता है।
4. जिस भूभाग की उत्तर दिशा में मार्ग हो तथा पश्चिम और दक्षिण में बहुमंजिल इमारत हो वह मध्यम श्रेणी का भू भाग होता है।
5. जिस भूभाग में उत्तर दक्षिण और पूर्व में सड़क हो तथा पूर्वी और उत्तरी सड़क भूभाग से नीची हो वह भूभाग मध्यम श्रेणी का होता है।
6. जिस भूभाग की उत्तर दक्षिण तथा पश्चिम में मार्ग हो तथा पश्चिमी सड़क उत्तर दक्षिण की सड़क से ऊँची हो तो वह भूभाग मध्यम फलदायी होता है।
7. जिस भूभाग की पूर्व उत्तर और दक्षिण में मार्ग हो एवं पूर्व और उत्तर का मार्ग भूभाग से नीचा हो वह भूभाग मध्यम श्रेणी का होता है।
8. जिस भूभाग की उत्तर पूर्व एवं पश्चिम दिशा में मार्ग हो और पश्चिम का मार्ग भू भाग से नीचा हो वह भूभाग मध्यम श्रेणी का कहा गया है।
9. जिस भूभाग की उत्तर पूर्व और दक्षिण में मार्ग हो तथा दक्षिणी मार्ग भू भाग से नीचा हो वह भूभाग मध्यम फलदायी होता है।

जघन्य श्रेणी के भूखण्ड -

1. जिस भूभाग के पूर्व में नीची सड़क हो तथा पश्चिम, दक्षिण तथा उत्तर में बहुमंजिली भवन हो वह भाग जघन्य फलदायी होता है।
2. जिस भूभाग से दक्षिण में सड़क हो तथा पूर्वी एवं दक्षिणी सड़कें जुड़ी हो एवं पूर्वी सड़क नीची हो वह भूभाग जघन्य श्रेणी का होता है।
3. जिस भूभाग के पश्चिम या दक्षिण में भूभाग से नीची सड़क हो या पूर्वी और उत्तरी दिशा में पहाड़ियाँ या ऊँची इमारत हो वह भूभाग जघन्य श्रेणी का होता है।
4. जिस भूभाग की दक्षिण एवं उत्तर में सड़क हो दक्षिणी सड़क उत्तरी सड़क से नीची हो तथा पूर्व में ऊँची इमारत या पहाड़ियाँ हो तथा पश्चिम में रिक्त स्थान हो, वह भूभाग जघन्य भूभाग होता है।

अति जघन्य श्रेणी के भूभाग -

1. जिस भूभाग के पूर्व एवं दक्षिण में मार्ग हो और पूर्व और उत्तर की ओर ऊँचे भवन या पहाड़ियाँ हो वह भूभाग अतिजघन्य श्रेणी का होता है।
2. जिस भूभाग के पूर्व एवं दक्षिण में भूखण्ड से नीची सड़क हो एवं पूर्व और दक्षिण में ऊँची इमारत हो वह भूभाग अतिजघन्य श्रेणी का होता है।
3. जिस भूभाग में सिर्फ दक्षिण में भूखण्ड से नीची सड़क हो तथा पूर्व और उत्तर में कोई रिक्त स्थान न हो वह भूभाग अतिजघन्य श्रेणी का भूभाग होता है।
4. उपरोक्त प्रकार के भूभागों पर धरातल के उत्तर-चढ़ाव इत्यादि का पूरा ध्यान रखते हुए यदि वास्तु निर्माण कार्य किया जायेगा तो निश्चय ही निम्न कोटि का भूखण्ड भी अपने पुरुषार्थ एवं वास्तु संरचना के अनुकूल अधिकाधिक फल प्रदाता होगा।

भूभाग पर रेखांकन निर्देश एवं शुभाशुभ -

1. रेखांकन के पूर्व ब्राह्मण सिर को, क्षत्रिय चक्षु एवं छाती को, वैश्य उदर को एवं शूद्र पैरों का स्पर्शकर रेखा डालना प्रारम्भ करें।

2. हाथ के अंगूठे मध्यमा अंगुली या प्रदेशिनी (तर्जनी) अंगुली से रेखा खींचें सोना, चांदी आदि धातु से, मणि आदि रत्न से तथा पुण्य, दधि, अक्षत आदि से रेखा डालना शुभ है।
3. शस्त्र से रेखा करने से शत्रु द्वारा मृत्यु, लोहे से रेखा डालने से बन्धन, भस्म से अनिभय, तृण एवं काष्ठ से रेखा डालने पर राजा से भय तथा रेखा ढेई या खण्डित हो जाने से शत्रुभय होता है।
4. रेखा स्पष्ट न हो चमड़ा, दांत, अंगार अथवा हड्डी से बनाई गई हो तो वह कल्याण कारक नहीं कही है। अपितु स्वामी के मरण का कारण कही है।
5. वार्षी ओर से खींची गई रेखा बैर का कारण होती है तथा दाहिनी ओर से खींची गई रेखा सम्पत्ति लाभ में कारण कही गई है। रेखांकन के समय कोई धूक दे अथवा छींक दे तो अशुभ होता है।
6. वास्तु पूजन एवं रेखा के समय यदि कोई कठोर वचन बोले तो यह अशुभ शकुन है उनका त्याग कर गृहारम्भ कार्य करें।
7. देवालय या गृहभूमि पर रेखा डालते समय सूत्र से नाप किया जाता है। यदि सूत्र पसारते समय टूट जाय तो यजमान या गृहस्वामी की मृत्यु होती है। कील गाढ़ने के समय कील का मुख नीचे तरफ हो जाय तो भयानक रोग तथा गृहपति एवं शिल्पी की स्मृति नष्ट होने की सूचना समझना चाहिए।
8. जल कुम्भ लाते समय यदि घड़ा कंधे से नीचे गिर जाय तो गृह स्वामी को सिर का रोग होता है। यदि वह कलश गिर कर आँथा हो जाय तो कुल को उपद्रव होता है। यदि घड़ा फूट जाय तो मजदूर की मृत्यु और यदि हाथ से ही घड़ा गिर जाय एवं फूट जाय तो गृहस्वामी की मृत्यु समझना चाहिए।
9. यदि विसर्जन के पहले ही घड़ा भग्न हो जाय तो कीर्ति की हानि होती है।
10. नवीन गृह भूमि को प्रथम बार खोदने वाला लोह यंत्र आदि विषम अंगुल का हो तो उस गृह में पुत्र लाभ, समअंगुल का हो तो उस गृह में कन्या लाभ और दांनों के मध्य में हो तो दुर्ख देने वाला होता है।

11. भूमि एवं लोह यंत्रादि की पूजन कर लोह यंत्र से जोर लगाकर भूमि का खनन करें। लोह यन्त्र पृथ्वी में जितना अधिक नीचे तक धुसता है उतने ही अधिक समय तक गृह की स्थिति होती है।

खनन समय के शुभाशुभ शकुन -

1. नींव खोदने के समय शुभवाणी, मांगलिक गीत, मंगल वस्तुओं का दर्शन, धर्मध्यानि, पुण्य एवं फल का लाभ, वेणु, वीणा और मृदंग आदि के शब्दों का सुनाई देना और इनका दिसाई देना शुभ होता है।
2. दधि, दूर्वा, और कुश आदि कल्याणप्रद वस्तुओं का दर्शन, स्वर्ण, चांदी, ताँबा, मोती, मूँगा, मणि, रत्न वैद्यर्थ स्फटिक, सुखदायक मिठ्ठी, गारूड, वृक्ष का फल एवं खाद्य पदार्थ आदि का दर्शन शुभ होता है।
3. कण्टक (करेले का वृक्ष) खजूर, सर्प, विच्छु, पत्थर, बज्ज, लोहदण्ड का मुद्गर, केश, कोयला, भस्म, चर्म, हड्डी, नमक, रक्त और मज्जा आदि पदार्थ का दर्शन अशुभ फल देने वाला होता है इन पदार्थों में से केश एवं कोयले आदि का (खनन के समय) भूमि से निकालना भी अशुभ का सूचक है।

वेध-दोष -

देवालय एवं भवन शिल्प शास्त्रानुसार निर्मित हो किन्तु किसी प्रकार के वेध दोष से दूषित हो तो वे सुख एवं समृद्धि आदि शुभ फलों में बाधक ही होते हैं। अतः सावधानी पूर्वक वेध दोषों से गृह एवं मंदिर की रक्षा करना चाहिए।

1. तल वेध

1. देवालय की कुम्ही एवं उद्म्बर एक सूत्र में न हो।
2. देवालय के गर्भ गृह या मुख्य गृह से बरामदा या मण्डप चौकी ऊँची हो।
3. देवालय या गृह पूर्व दिशा की ओर ऊँचा और पश्चिम में नीचा हो।
4. देवालय या गृह की जमीन से आसपास की जमीन ऊँची तो (गृह गड्ढे में हो) तो सर्व तल दोष होता है।

5. गृह आदि के द्वार, खिड़की, झरोखा एवं किवाड़ का उत्तरांग आदि समसूत्र में न हो।
6. वास्तु भूमि कहीं ऊँची और कहीं नीची हो तो भी तलवेध दोष होता है। द्वार के सामने घानी या अरहट हो, या मकान के पानी का पनाला हो या दूसरों के आने जाने का रास्ता हो तो तलवेध दोष होता है।

2. ताल वेध दोष -

1. ताल वेध दो प्रकार का होता है।
 - (1) जिस मंदिर या गृह की खिड़कियाँ, द्वार, अलमारी, जालियाँ, गोखला और द्वार के उत्तरांग आदि एक सूत्र में न हो तो वह ताल वेध है।
 - (2) एक ही मंजिल में या एक ही कमरे में पाट/बीम/एवं धरन (पीठ) छोटे बड़े हो या ऊँचे नीचे हो तो ताल वेध दोष है।

3. दृष्टि वेध दोष -

1. देवालय में विराजमान देव की या मुख्य गृह में बैठे हुए गृह स्वामी की दृष्टि देवालय या गृह के अग्र भाग में न पड़ती हो।
 2. मूलगृह के सामने के भाग का द्वार बहुत नीचा हो या बहुत ऊँचा हो।
 3. मुख्य गृह के द्वार के सामने ही दूसरों के घर का मुख्य द्वार हो।
 4. जिस गृह को देखते ही भय या धृणा पैदा हो।
 5. गृह के द्वार के सामने अन्य द्वार दुगने प्रमाण वाला हो।
 6. एक घर के मनुष्यों की चेष्टायें अन्य घर वालों के दृष्टिगत हो रही हों।
 7. शास्त्रानुसार देवालय के द्वार विभाग के नियत स्थान पर देव की दृष्टि न हो।
4. तुला वेध दोष
1. एक पाट के ऊपर दूसरा आड़ा पाट आवे किन्तु उसकी सन्धि से नीचे स्तम्भ न रखा जावे तो तुला वेध दोष होता है।
 2. नीचे की मंजिल और उपरिम मंजिल के पाट छोटे या बड़े हों अथवा प्रमाण से हीनाधिक हो।
 3. पीढ़े या पाटले ऊँचे-नीचे अथवा पतले, सोटे हों।
 4. छत के नीचे ढाली जाने वाली कड़ियाँ द्वार के गर्भ में आवे।

5. द्वार के गर्भ में पीढ़ा या पाटला आवे।
6. नीचे की मंजिल से उपरिम मंजिल के पाट आदि संरच्चय में कम अथवा अधिक हो तो तुला वेध दोष होता है।
7. पाट या उत्तरांग ललाट के बराबर हो।

5. स्तम्भ वेध दोष

1. एक ही पंक्ति में आये हुए स्तम्भों की मोटाई कम या अधिक हो।
2. स्तम्भ एक पंक्ति में न हो।
3. द्वार, खिड़की या जाली आदि के सामने स्तम्भ हो।
4. स्तम्भ योग्य स्थान में और पद में न हो।
6. हृदय वेध दोष

1. गृह के मध्य में स्तम्भ हो।
2. गृह के बीच में अन्नि या पानी का स्थान हो।
3. गृह (आंगन) के मध्य भाग में शौच का टेंक बनाया गया हो।

7. मर्म वेध दोष

कल्पित वास्तु पुरुष के वक्षस्थल, मस्तक, नाभि और दोनों स्तन इन पाँच अंगों को और संघि स्थानों को मर्म स्थान कहते हैं। इन स्थानों पर दीवाल स्तम्भ एवं पाट आदि रखना मर्म वेध दोष है।

8. मार्ग वेध दोष

1. घर में से या घर के किसी भाग में राहगीरों के आने जाने का मार्ग हो।
2. एक बगल में दो घर हो किन्तु उसमें जाने का मार्ग एक ही हो तो मार्ग वेध होता है।
3. मकान के मुख्य द्वार के सामने सीधी रेखा में मार्ग होता हो तो मार्ग वेध दोष होता है। यह दोष शोक और दुःख देने वाला है।

9. वृक्ष वेध दोष

1. देवालय या गृह के सामने कोई वृक्ष हो।
2. गृह के चारों ओर अथवा किसी एक या दो ओर निषिद्ध वृक्ष हो।
3. पीपल इमली आदि भूतप्रेर के निवास वाला कोई वृक्ष गृह के समीप हो।

10. छाया वेध दोष -

1. दिन के दूसरे या तीसरे पहर में किसी वृक्ष की छाया देवालय या गृह पर पड़ रही हो।
2. दिन के दूसरे या तीसरे प्रहर में देवालय की ध्वजा की छाया गृह पर पड़ रही हो।
3. गृह की छाया कुर्यां में पड़ रही हो।

11. द्वार वेध दोष -

1. गृह के मध्य भाग में द्वार रखा गया हो।
2. गृह के मुख्य द्वार के सामने दूसरे के गृह का द्वार हो तो द्वार वेध होता है। किन्तु यदि स्वयं के गृह का द्वार होता है तो द्वार वेध नहीं होता है।
3. गृह की कुक्षि में द्वार रखा गया हो तो व्याधि सताती है।
4. गृह के पीछे द्वार हो तो रोगों का आक्रमण रहता है।
5. सामान्यतः जिस गृह की एक ही भूमि हो उस के पीछे द्वार रखा हो। दूसरे दर्जे में रखा हुआ पिछवाडे का द्वार हानिप्रद नहीं होता है।
6. एक ही पंक्ति के द्वार, जाली खिड़की आदि ज्यों के त्वां रखे गये हो।
7. गृह के सामने स्तम्भ, किसी के मकान का कोना, रास्ता कुआं, घानी गर्ट (मोरी), पाट दीवाल एवं देवालय होने से द्वार वेध होता है।
8. स्वर वेध - गृह द्वार के किवाड़ खोलते या बन्द करते समय यदि आवाज करते हों या अक्समात ही आवाज करते हों तो स्वर वेध होता है।
9. कील वेध - गृह के मुख्य द्वार के सामने या ऊपर कील, खूंटा या घोड़ा मध्य गर्भ में हो तो कील वेध दोष होता है।
10. दीपालय वेध - गृह की दाहिनी ओर अथवा गृह द्वार की अर्धांत के समस्त्र में दीप स्थान हो तो दीपालय वेध दोष होता है।

वेध का अशुभ फल -

1. मुख्य द्वार के सामने वृक्ष का वेध होने पर बालकों के लिए हानिकारक है।
2. मुख्य द्वार के सामने कीचड़ का वेध होने पर वह परिवार के लिए शोककारक है।

3. मुख्य द्वार के सामने जल निकास नाली का वेध होने पर धन का विनाश होता है।

4. मुख्य द्वार के सामने महादेव या सूर्य मंदिर होने पर गृह स्वामी का विनाश होता है।

5. मुख्य द्वार के सामने स्तम्भ का वेध होने पर स्त्रियों को नाशकारक है।

6. मुख्य द्वार के सामने कुंआ होने पर अपस्मार रोग (वायु विकार) होता है।

7. मुख्य द्वार के सामने ब्रह्मा का द्वार हो तो कुल नाश होता है।

8. कोने के बराबर कोना, आते के बराबर आला, खूंटे के बराबर खूंटा तथा खम्मे के बराबर खम्मा ये सब वेध को छोड़कर रखना चाहिए।

9. आले के ऊपर खूंटा या कीला, द्वार के ऊपर स्तम्भ, स्तम्भ के ऊपर द्वार द्वार के ऊपर दो द्वार, समान खण्ड और विषम स्तम्भ ये सब वडे अशुभ फलदायक होते हैं।

10. देवालय, राजभवन राजाप्रासाद, बिना स्तम्भ के नहीं बनाना चाहिए। किन्तु खण्ड में अन्तर पट तथा मंची अवश्य बनाना चाहिए। पीढ़े सम संख्या में बनाना चाहिए। कोने के बगल में स्तम्भ अवश्य बनाना चाहिए।

11. खूंटी, खिड़की, आला इन में से कोई खण्ड के मध्य भाग में नहीं आना चाहिए।

12. जिस घर के मध्य भाग में या आंगन में त्रिकोण या पंचकोण भूमि हो उस घर में रहने वाले को कभी भी सुख समृद्धि नहीं होगी।

13. गोल कोने वाला या एक, दो तीन कोने वाला या दाहिनी और बांयी ओर लम्बा घर रहने योग्य नहीं है।

14. एक ही घर यदि एक वेध से दूषित है तो कलह, दो वेध से दूषित तो अतिहानि तीन वेध से दूषित है तो भूतों का वास, चार वेधों से दूषित है तो लक्ष्मी नाश पांच वेध से दूषित है तो भयंकर पीड़ा होती है।

वेध दोष परिहार -

1. देवालय या मकान के मध्य यदि राजमार्ग, कोट, किला आदि आये तो वेध दोष नहीं रहता।

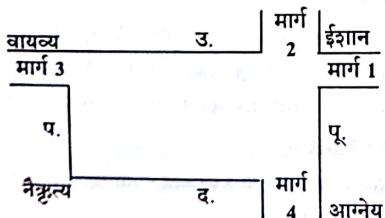
2. मध्य में दीवाल हो तो स्तम्भों के पद को दोष नहीं होता।
3. घर की ऊँचाई से दुगनी और मंदिर की ऊँचाई से चार गुनी भूमि को छोड़कर कोई दोष नहीं होता।
4. यदि छत का दीवार अथवा मार्ग का अन्तर होव तो दोष नहीं माना जाता है।

बीथी शूल -

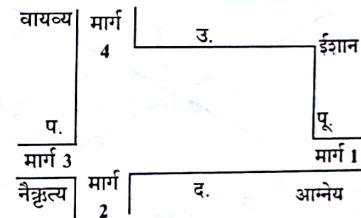
1. जो मार्ग किसी निर्माण स्थल के प्रांगण में अथवा मन्दिर, भवन एवं गृह के प्रभुख द्वार में बिना रुकावट सीधे प्रवेश करता है उसे बीथी शूल कहते हैं।
2. अलग-अलग दिशाओं से आते हुए जो मार्ग भवन या गृह का स्पर्श करते हुए उसी गृह में समाप्त हो जाते हैं उन्हें बीथी शूल कहते हैं।

शुभ बीथी शूल -

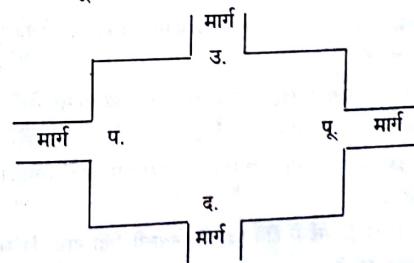
1. पूर्व दिशा से आने वाला जो मार्ग ईशान कोण से गृह में प्रवेश करता है वह शुभ है।
2. उत्तर दिशा में आने वाला जो मार्ग ईशान कोण से गृह में प्रवेश करता है वह शुभ है।
3. पश्चिम दिशा में आने वाला जो मार्ग वायव्य कोण से गृह में प्रवेश करता है वह शुभ है।
4. दक्षिण दिशा से आने वाला जो मार्ग आग्नेय कोण से गृह में प्रवेश करता है वह शुभ है।

**अशुभ बीथी शूल -**

1. पूर्व दिशा से आने वाला जो मार्ग आग्नेय कोण से गृह में प्रवेश करता है वह अशुभ है।
2. दक्षिण दिशा से आने वाला जो मार्ग नैऋत्य कोण से गृह में प्रवेश करता है वह अशुभ है।
3. पश्चिम दिशा से आने वाला जो मार्ग नैऋत्य कोण से गृह में प्रवेश करता है वह अशुभ है।
4. उत्तर दिशा से आने वाला जो मार्ग वायव्य दिशा से गृह में प्रवेश करता है वह अशुभ है।

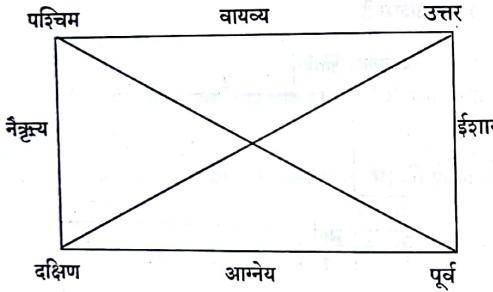


3. पूर्व, दक्षिण, पश्चिम एवं उत्तर दिशा से आने वाले चारों मार्ग यदि एक साथ किसी एक भवन में प्रवेश कर रहे हो तो वह भी एक प्रकार का बीथी शूल है।



वास्तु विज्ञान

- चारों दिशाओं से आने वाले मार्ग एक साथ जिस गृह में समाप्त हो रहे हैं वह गृह अत्यन्त अशुभ होता है। ऐसे गृह का दूर से ही त्याग कर देना चाहिए जो भी व्यक्ति इसमें रहेगा व जीवन पर्यन्त संकटों में रहेगा।
4. चारों दिशाओं में से किसी भी एक दिशा से आया हुआ कोई एक मार्ग यदि किसी गृह में समाप्त होता है तो भी वह अशुभ फल देता है।
5. जिस मंदिर, समा मण्डप, प्रासाद, भवन गृह एवं विवाह मण्डप आदि के दक्षिणोत्तर ध्रुव अर्थात् पूर्व आदि दिशाएँ कोणों में पड़ रही हो तो वे वास्तु भी शुभ फलप्रद नहीं होते।



अशुभ गृह -

- जो गृह जाली, खिड़की और मोरी आदि से रहित होता है उसमें रहने वाले भयंकर रोगों से पीड़ित रहते हैं।
- अंगदीन तथा असमान बाजू वाले गृह में निवास करने वालों को कुष्टादिक रोग होते हैं।
- जो गृह दिशाओं में खिड़की रहित हो उसके निवासी नेत्र रोगी होते हैं।
- जिन गृहों के द्वार भूमिगत होते हैं उनके गृह पति का मरण होता है।
- जो गृह जट्ठा-तहाँ बना हो या समकोण न हो ऐसे गृह में गर्भनाश का भय रहता है।
- प्रमाण से ऊँचाई में हीन गृहों के निवासी सदा नीच की संगति के इच्छुक होते हैं।

वास्तु विज्ञान

- जो गृह पार्श्व भाग में ऊँचा हो उसके निवासी सदा निर्धन रहते हैं।
- ताल-मान से हीन गृहों के गृह पति का नाश होता है और धन, जन का नाश होता है।
- जिस गृह के पार्श्व भाग नीचे हो वह शूल्य ही पड़े रहते हैं।
- जो गृह हल के समान ऊँचे होते हैं उसके गृह पति स्त्री विहीन एवं दास होते हैं।
- गृह के मध्य भाग में पाषाण हो तो वह गृह सर्व दोषों का कर्ता होता है।
- जो गृह प्रमाण से न्यून या अधिक ऊँचा होता है वह भयंकर रोगों को कर्ता है।
- त्रिकोण गृह, गृह पति को शीघ्र ही निर्धन करता है।
- यदि गृह बांयी ओर बड़ा और दांयी ओर छोटा हो तो अशुभ होता है।
- अधिक लम्बा गृह निरर्थक होता है।
- जिस गृह के अग्रभाग में अन्य गृह हो अथवा कोण के सामने दूसरे का कोण हो वह अशुभ है।
- एक प्रधान द्वार के सामने दूसरे का प्रधान द्वार हो अथवा गृह से दूना ऊँचा द्वार हो तो धन हानि और मरण होता है।
- जिस गृह में दूसरे और तीसरे पहर में दूसरे घर की छाया पड़ती हो वह अशुभ है।
- जो गृह एक ओर अधिक लम्बा और दूसरी ओर कम लम्बा हो उसमें अनेक दोष हैं।
- जिस गृह के आगे बांस का वृक्ष हो या आगे किसी के मकान की दीवाल हो वह वंश नाश करता है।
- जिस घर की दीवाल के सामने पर्वत से निकला हुआ पत्थर खड़ा/पड़ा हो तो वह गृह रोग और शोक देता है।
- जो गृह पर्वत के ऊपर हो, पर्वत के नीचे भाग में हो, पत्थरों से संलग्न हो हो दो शिखरों के अन्तर्गत हो, जल धारा के अग्र भाग में हो, पर्वत के मध्य लगा हो दो शिखरों के अन्तर्गत हो, नदी के तौर पर हो घर की दीवालों से

- मिन्न हो। जिसका द्वार उदासीन (रोता) हो जिसमें कौये/उलू रहते हो जिसमें रात्रि में शब्द होते हों, जिसमें स्थूल सर्प रहते हो, जो जल और अग्नि से दूषित हो जो जल के बहाव से युक्त हो जिसमें ऊपर से गिरकर किसी की मृत्यु हुई हो। जिसमें ब्रह्म हत्या हुई हो जिसकी दीवाल के बाहर का काष्ठ स्थिर से युक्त हो। जिसके चारों कोने कांटों से युक्त हो, जो श्मशान से दूषित हो जो मनुष्यों के निवास से विहीन हो, जिसमें चाण्डाल और म्लेक्ष बसे हो। जो बिलों से सहित हो, गोह आदि रहती हों ऐसे गृहों के स्वामी का मरण होता है।
23. जिसकी सम्पूर्ण दिशाएं तिरछी हो वह अशुभ है।
 24. दक्षिण द्वार बाला गृह सर्वथा त्याज्य है। यह दुख का कारण होता है।
 25. जहाँ पहले उत्तर दिशा का घर बनाकर पीछे दक्षिण दिशा का घर बनाया जाता है वह अशुभ होता है।
 26. यदि मुख्य घर का द्वार प्रवेश करते समय बांयी ओर हो अर्थात् प्रवेश करने के बाद बांयी ओर जाकर मुख्य घर में प्रवेश हो तो वह घर निन्दित है अनेक व्याधियाँ होती हैं।
 27. यदि मुख्य घर की दीवाल धूमकर मुख्य घर के द्वार में प्रवेश होना पड़ता है तो ऐसा घर निन्दनीय है।
 28. घर के आगे का भाग चौड़ा और पीछे का भाग सकड़ा होना अशुभ है।
 29. घर का द्वार भाग ऊँचा और पीछे का भाग नीची होना अशुभ है।
 30. घर की भूमि कहीं सम कहीं विषम हो तो अशुभ है। कुट रोग होता है।
 31. एक ही खण्ड में पीढ़ी नीचे ऊँचे हो तो घर अशुभ है भय उत्पन्न करते हैं।
 32. जिस घर के पीछे की दीवाल में सुई के मुख बराबर भी छिद्र होगा वह गृह सुख शान्ति नहीं दे सकता है।
 33. गृह बनाने के बाद यदि किसी कार्य विशेष से अधिक भूमि लेना पड़े तो घर के दांयी बांयी ओर एवं आगे भूमि लेनी चाहिए। घर के पीछे की ती हुई भूमि भयंकर कष्टदायी होती है।

34. घर बनाते समय किसी देव मंदिर, कुआं, बावड़ी, मठ, राजमहल, श्मशान या पुराने मकान के पत्थर, ईंट, चूना, लकड़ी आदि एक तिल मात्र नहीं लगाना चाहिए। गृहपति रह नहीं पाता।
 35. यदि पुराने मंदिर का पाषाण आदि नवीन मंदिर में लगा दिया जावेगा तो मंदिर शून्य रहेगा। उसमें पूजा प्रतिष्ठा नहीं होगी।
 36. संगमरमर के खम्भे, पीढ़े द्वार-शाख सामान्य गृहस्थ के घर में लगाना अशुभ है। किन्तु मंदिर एवं धर्मस्थानों में लगाना शुभ है।
 37. पूर्व, पश्चिम दिशा का वास्तु अग्नि और वायु कोण में दिङ्मूढ़ हो तो स्त्री का विनाशकारक है। दक्षिणोत्तर दिशा का वास्तु भी अग्नि और वायु कोण में दिङ्मूढ़ हो तो सर्व विनाश कारक है।
 38. ईशान अथवा नैऋत्य दिशा में घर टेढ़ा हो तो दिङ्मूढ़ दोष नहीं माना जाता। जैसे - तीर्थ स्थान में मंदिर के मूढ़-अमूढ़ दोष नहीं माना जाता।
- वृक्षों की अपेक्षा शुभाशुभ -**
1. जिस गृह की पूर्व दिशा में पीपल का वृक्ष, दक्षिण दिशा में पाकर (अंजीर) का वृक्ष, पश्चिम दिशा में बड़ा का वृक्ष हो और उत्तर दिशा में उदुम्बर गूलर का वृक्ष हो वह गृह निवास करने वाले को अशुभ फल देते हैं।
 2. बिजोरा, केला, अनार, नीबू, आक, इमली, बबूल, बेर और पीले फूल वाले वृक्ष घर में या घर के समीप हो या इन वृक्षों की जड़ घर में प्रवेश करती हो या इनकी लकड़ी घर बनाने के काम में लगाई हो या इन वृक्षों की छाया घर के ऊपर पड़ती हो तो उस घर के निवासियों के कुल का नाश होता है।
 3. आग्नेय आदि विदिशाओं में क्रमशः दूध वाले वृक्ष कदम्ब वृक्ष, काटें वाले वृक्ष और फल वाले वृक्ष हो तो अशुभ होते हैं।
 4. यदि गृह के पूर्व में दूध वाले वृक्ष, दक्षिण में मठ या मंदिर, पश्चिम में कमल सहित जल और उत्तर में खाई हो तो शत्रु का भय रहता है। धन का नाश होता है।

वास्तु विज्ञान

44

5. गन्ना, द्राक्ष, कनेर, जाई, तगर, गुलाब तथा और भी कोई दूसरे देव वृक्ष घर के आंगन में लगाना अशुभ है।
6. खजूर, दाढ़िम, केला, बेर, केतकी, नीबू, पीपल, गन्ना, गूलर, पीपली बड़ा आम खेर कनेर और गुलाब आदि के वृक्ष जिस गृह में होते हैं उसका स्वामी दुखी रहता है।
7. घर के सभीप, कट्टे वाले वृक्ष, शत्रु भय, दूध वाले वृक्ष लक्ष्मी नाश, फल वाले वृक्ष, सन्तान और प्रजा का नाश करते हैं।

पशु पक्षियों की अपेक्षा सुभाशुभ -

1. भवन की छत पर, झरोखों में द्वारों पर या दीवालों पर यदि अचानक टिड़ियाँ या मधुमक्खियाँ आकर गिरती हैं तो भय शोक कलह, जन हनि मृत्यु तुल्य कष्ट एवं बन्धु विवेग होने का भय रहता है।
2. भवन के मुख्य द्वार से सर्प प्रवेश हो तो गृह स्वामी की या गृहणी की अचानक मृत्यु होती है।
3. उल्लू अथवा बाज पक्षी यदि निरन्तर घर पर बैठते हैं तो दरिद्रता आती है।
4. ये पक्षी आदि अचानक आकर घर में गिरते हैं तो परिवार की स्त्रियों को मरण तुल्य कष्ट होता है।
5. गीदड़ी या कुतिया घर में प्रवेश कर प्रसव करे तो गृह स्वामी को मरण तुल्य कष्ट होता है।
6. बन्य जन्तुओं का घर में प्रवेश अथवा रात्रि में घर के पास रहना परिवार के क्षय का चोतक है।
7. मुख्य द्वार पर छिपकलियों का निरन्तर धूमना व्याधि और विवाद का सूचक है।
8. काक, गुध, कन्तुर एवं चीलादि पक्षी भवन के ऊपर निरन्तर बैठते हों तो छह माह के भीतर गृह स्वामी का मरण या मरण तुल्य कष्ट होता है।
9. यदि कोई आहत पक्षी या इनके शरीर का कोई कटा हुआ अवयव घर में गिरे तो उस घर में कुछ ही समय बाद महासंकट आता है।

वास्तु विज्ञान

45

10. घर में विलाव का रोना दुखद घटना का और बिलाव लडना विपत्ति का सूचक है।
11. घर में चमगादड का लटकना मंडराना या मर जाना शोक एवं भय का चोतक है।
12. रात्रि में भवन के सामने गर्दभ का रुदन करना शत्रु भय शोक एवं महादुःख का सूचक है।
13. घर में काले रंग के चूहों की अधिकता परिवार में रोग का सूचक है।
14. रात्रि में गृह की छत पर मपूर क्रन्दन स्वर करें तो वह पारिवारिक विपत्ति का सूचक है।
15. घर में चिड़ियों का महा क्रन्दन हो तो यह सर्प के आने अथवा अन्न-पान में विष की आशंका का सूचक है।
16. गृह की छत, दीवाल या अन्यत्र कहीं भी ताल चीटियां के समूह रेंगते हो तो सम्पत्ति क्षय के सूचक हैं और यदि पंख बाली काली चीटियां रेंगती हो तो सहसा क्लेश एवं अशांति होती है।
17. यदि घर में सहसा ऊँट प्रवेश कर जाय तो दरिद्रता का सूचक है।
18. जिसकी गाय स्वयं अपना दूध पीती हो वह कर्जदार बनेगा।
19. गाय का अधिक सिर हिलाना भाय हीनता का सूचक है।
20. गीदड़ी पूर्वाभिमुख हो गृह के सम्मुख रुदन करे तो सन्तान का या गृह पति का शीघ्र विनाश होता है।
21. नये घर में प्रवेश के दिन सूर्योदय के समय कोई पशु रुदन करे तो घर में परिवार सुखी नहीं रह सकता।
22. गृह स्वामिनी के हाथ से बार-बार अकारण भोजन का गिरना दरिद्रता का सूचक है।
23. जिस घर में स्वाद हीन भोजन बनता है उस घर के बालक रोगी और अप्रसन्न रहते हैं।
24. देव प्रतिमा का सहसा खण्डित होना उस क्षेत्र में मृत्यु तुल्य कष्ट का सूचक है।

25. गृह के खम्मों और दीवालों का सहसा कम्पित होना महाब्याधि और दम्पत्ति नाश का सूचक है।
26. यदि घर में गीत एवं बायादि सहसा सुनाई दे तो चोरी का भय होता है।
27. रसोई घर के पत्थर का सहसा टूट जाना दरिद्रता का सूचक है।
28. यदि घर के बस्त्र बार-बार जलते हों तो अनेक कथ्यों से संघर्ष करना चाहिए।
29. यदि जल से भरा नया घड़ा अकारण हाथ से छूट जाय या फूट जाय तो अचानक आर्थिक कठिनाई आती है।
30. जिस घर में अचानक बार-बार दूध गिरता हो तो उसमें विवाद उत्पन्न होगा।
31. यदि कौआ मांस या हड्डी लाकर घर में गिरता है तो अमंगल, विवाद एवं चोरी की आशंका होती है।
32. यदि कोई पक्षी घर में सहसा लोहे का टुकड़ा गिरा दे तो पीड़ा, कारावास एवं छापा पड़ने का भय होता है।
33. अन्नि के बिना ही यदि घर धूमाकुल प्रतीत हो तो अशान्ति का आगमन होता है।
34. यदि किसी उत्सव पर अन्नि उपद्रव हो तो वह वर्ष गृहस्वामी के लिए अशुभ होता है।
35. घर में अर्धांत्रि में स्त्री का रुदन सुनाई देना लक्ष्मी के बिनाश का संकेत है।

शुभ संकेत -

1. मुख्य द्वार पर या घर के भीतर सहसा गाय का रम्भाना सुख सौभाग्य का सूचक है।
2. घर में विल्ली का प्रसव करना सम्पदा प्राप्ति का सूचक है।
3. भवन के द्वार पर हाथी सहसा सूँड उठावे तो जय का सूचक है।
4. सोन चिरिया एवं कोयल का मधुर स्वर करना गृह स्वामी के भाग्योदय और सुखी जीवन का सूचक है।
5. गृह की छत पर दीवाल आदि पर काली चींटियां रहती हो अथवा रेंगती हो तो गृह पति का निरन्तर विकास होता है।

6. गृह के दक्षिण भाग में तीतर का ध्वनि करना अकस्मात् सुख सौभाग्य एवं धन प्राप्ति का सूचक है।
7. यदि कोई पक्षी घर में सहसा चांदी का टुकड़ा गिरा दे तो लक्ष्मी की प्राप्ति होती है।
8. प्रातः की काक वाणी प्रिय के आगमन की एवं मध्याह्न की काक वाणी अतिथि के आगमन की सूचक है।
9. गृह के बांयी ओर गर्दभ आवाज करता है तो व्यापार की वृद्धि होती है।
10. गृह के आंगन में बन्दर सहसा आम की गुड़ली गिरता है तो व्यापार में लाभ होता है।

आय -

1. ध्वज, धूम, सिंह, श्वान, वृक्ष, खर, गज और ध्वांक्ष ये आठ आय हैं। ये पूर्वादिक्रम से रखे जाते हैं।
2. विषम आय-ध्वज, सिंह, वृक्ष और गज श्रेष्ठ हैं।
3. सम आय-धूम श्वान खर और ध्वांक्ष ये अशुभ हैं।
4. चारों तरफ नींव की भूमि को अर्थात् दीवार करने की भूमि को ढोड़कर मध्य में जो लम्बी चौड़ी भूमि होवे उसको गृह स्वामी के हाथ से नामें जो लम्बाई चौड़ाई आवे उनका परस्पर गुणा करने से भूमि का क्षेत्रफल होता है। इस क्षेत्रफल में आठ का भाग देने पर जो शेष बचे वह ध्वज आदि आय जानना चाहिए।
5. ब्राह्मण के घर में ध्वज आय, क्षत्रिय के घर में सिंह आय, वैश्य के घर में वृष आय और शूद्र के घर में गज आय एवं मुनि के आश्रम में ध्वांक्ष आय देना चाहिए।
6. ध्वज, गज और सिंह ये तीनों आय उत्तम स्थानों में, ध्वज आय सब जगह, गज, सिंह और वृक्ष ये तीनों आय गाँव किला आदि स्थानों में देना चाहिये।
7. बावड़ी, कुंआ, तालाब और शयन इन संस्थानों में गज आय श्रेष्ठ है।
8. सिंहासन आदि आसन में सिंह आय श्रेष्ठ है।

10. भोजन के बर्तन में बृक्ष आय और छत्र तोरण आदि में ध्वज आय रखना श्रेष्ठ है।
11. बृष्टि, गज और सिंह ये तीनों आय नगर प्रासाद (देव मंदिर या राजमहल) और सब प्रकार के घर आदि स्थानों में देना चाहिए।
12. इच्छान आय म्लेक्षादि के घरों में और ध्वांशा आय तपस्वियों के उपाश्रय मठ, झोपड़ आदि में देना चाहिए।
13. भोजन पकाने के स्थान में तथा अग्नि से क्रिया करने वालों के घरों में धूम आय देना चाहिए।
14. बत्तीस हाथ से अधिक वाला घर हो तो उसमें आय आदि का विचार नहीं करना चाहिये तथा जीर्ण घर के उद्धार के समय भी आय व्यय और मांस शुद्धि आदि का विचार नहीं करना चाहिए।
15. घर बनाने की भूमि की लम्बाई और चौड़ाई का गुणा करें जो गुणनफल आवे उसको घर का मूल राशि (क्षेत्रफल) जानना चाहिए। इसमें आठ का भाग देने से जो शेष बचे वह आय होती है।
16. क्षेत्रफल में आठ का गुणा करके सत्ताईस का भाग देने से जो शेष रहे वह घर का नक्षत्र होता है। ग्रहारम्भ के दिन नक्षत्र तक ग्रहपति के नक्षत्र तक जिनकी जितनी संख्या है उसमें 9 का भाग देन पर 1, 3, 5, 6 शेष रहे तो मकान अशुभ फल करेगा और यदि 2, 4, 6, 8, 0 शेष रहे तो शुभ फल देने वाला होगा।
17. घर के नक्षत्र को चार से गुणा करके 9 का भाग दो जो लब्धि आवे वह घर की भुक्त राशि समझना चाहिए। भुक्त राशि और घर के स्वामी की राशि परस्पर छट्टी और आठवीं हो अथवा दूसरी और बाहरी हो तो अशुभ है।
18. घर के नक्षत्र की संख्या को आठ से भाग देना, जो शेष बचे वह व्यय जानना। यह व्यय यथा, राक्षस और पिशाच ये तीन प्रकार का होता है।
19. आय की संख्या से व्यय की संख्या कम हो तो यथा व्यय, अधिक हो तो राक्षस व्यय और बराबर हो तो पिशाच व्यय समझना चाहिये।

20. यदि घर का यक्ष व्यय हो तो धन धान्यादि की वृद्धि करने वाला है राक्षस व्यय हो तो धन धान्यादि का नाश करने वाला है पिशाच व्यय हो तो मध्यम है।
21. आग्निंदि जानने के लिए उदाहरण - जैसे - घर बनाने की भूमि 7 हाथ और 9 अंगुल लम्बी तथा 5 हाथ और 7 अंगुल चौड़ी है। इन दोनों को अंगुल बनाने के लिए हाथ को 24 का गुणा करके अंगुल जोड़ दें तो $7 \times 24 = 168 + 9 = 177$ अंगुल की लम्बाई और $5 \times 24 = 120 + 7 = 127$ अंगुल की चौड़ाई हुई। इन दोनों अंगुलात्मक लम्बाई चौड़ाई को गुणा किया तो $177 \times 127 = 22479$ यह क्षेत्रफल हुआ इसको 8 से भाग दिया तो $22479 \div 8 =$ शेष 7 रहे यह सातवां गज आय हुआ।
22. अब घर का नक्षत्र लाने के लिए क्षेत्रफल को आठ से गुणा किया तो $22479 \times 8 = 179832$ गुणनफल हुआ। 27 से भाग दिया तो $179832 \div 27 =$ तो शेष 12 बचे यह अश्विन आदि से गिनने पर बारहवाँ उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र हुआ।
23. घर की भुक्त राशि जानने के लिए नक्षत्र उत्तरा फाल्गुनी बारहवाँ है तो 12 को 4 से गुणा किया तो $12 \times 4 = 48$ हुये इनको 9 से भाग दिया तो लब्धि 5 आई $48 \div 9 = 5$ लब्धि-यह पाँचवीं सिंह राशि हुई यह नियम सर्वत्र लागू नहीं होता।
24. व्यय जानने के लिए घर का नक्षत्र उत्तराफाल्गुनी बारहवाँ है इसलिये 12 को 8 से भाग दिया $12 \div 8 =$ तो शेष 4 बचे यह आय 7 वे से कम है इसलिये यक्ष व्यय हुआ अच्छा है।

वार -

सूर्य, मंगल और शनि के वार गृह में अग्नि का भय देने वाले होते हैं। शेष गृहों के वार गृहकर्ता को अभीष्ट सिद्धि करने वाले होते हैं। कोई आचार्य शनि को शुभ मानते हैं। किंतु इसमें चोर भय होता है। क्षेत्रफल में 2 का गुणा कर 7 का भाग देने पर जो शेष बचे वह वार की संख्या होती है।

अंश -

इन्द्रांश, यमांश और राजांश ये तीन अंश होते हैं। इन्द्रांश में पद वृद्धि और सुख की प्राप्ति होती है। यमांश में अनेक प्रकार के रोग शोक होते हैं और मृत्यु तक हो जाती है। राजांश में धन-धान्य और पुत्र की प्राप्ति होती है।

क्षेत्रफल में 6 का गुणा कर 9 का भाग देने पर 1,4,7 शेष रहने पर इन्द्रांश 2, 5, 8 रहने पर यमांश और 3, 6, 0 रहने पर राजांश होता है।

द्रव्य (धन) क्रण -

यदि गृह अधिक धन और न्यून क्रण वाला हो तो शुभ अर्थात् गृहपति की वृद्धि होती है और यदि गृह अधिक क्रण और न्यून धन वाला हो तो गृह अशुभ अर्थात् दरिद्रता देता है।

क्षेत्रफल में 8 का गुणा कर 12 का भाग देने पर जो शेष बचे वह धन है और क्षेत्रफल में 3 का गुणा कर 8 का भाग देने पर जो शेष बचे वह क्रण है। धन से क्रण कम होना श्रेष्ठ है।

तिथि -

रिक्ता (4, 9, 14) तिथियाँ और अमावस्या आने पर गृह अशुभ होता है। शेष तिथियों के आने पर घर शुभप्रद माना जाता है।

क्षेत्रफल में 8 का गुणा कर 15 का भाग देने पर जो शेष बचे वह तिथि होती है।

योग -

27 योगों में से अतिगण्ड, शूल, विष्कंभ, गण्ड, व्याघात, वज्र, व्यतिपात और वैद्युत नितांत अशुभ हैं। शेष योग प्रायः शुभ है।

क्षेत्रफल में 4 का गुणा कर 27 का भाग देने पर जो शेष बचे वह योग का अंक होता है।

शल्य -

शल्य का लक्षण - जिन निकृष्ट वस्तुओं के सद्भाव से अथवा सम्पर्क से द्रव्य, क्षेत्र एवं वातावरण आदि दूषित होते हैं, विज्ञनों ने उन पदार्थों को शल्य की संज्ञा दी है।

शल्य पदार्थ - खोपड़ी, हड्डी, चर्म, बाल, राख, कोयला, लोहा एवं अतिक्षर आदि पदार्थ शल्य कहे गये हैं। इन सब शल्यों में सबसे निकृष्ट और अत्यन्त हानिकारक शल्य मनुष्य की खोपड़ी और हड्डियों को कहा गया है।

शल्य शोधन विधि -

हित की इच्छावाले शल्योद्धार अवश्य करें। शुभ दिन और शुभ नक्षत्र में जिस दिन चन्द्रमा और तारा अपने अनुकूल हो उस दिन शुभ लग्न तथा शुभ समय में शल्योद्धार करें। शल्योद्धार के पूर्व दिन विधिवत् वास्तुपूजन अवश्य करें।

जिस भूमि पर जिनालय/गृह बनवाना हो उस समस्त भूमि के समान 9 भाग करें। इन नौ भागों में पूर्वादि आठ दिशा और मध्य में व, क, च, त, ए, ह, स, प और मध्य में यह नौ अक्षर क्रम से लिखें। तदन्तर किसी कुंवारी कन्या को पूर्व दिशा में मुख कराकर हाथ में श्रीफल (नरियल) देकर उँ हीं श्रीं ऐं नमो वाम्बादिनी मम प्रश्ने अवतर, अवतर।

इस मंत्र से खड़िया मिठी को 21 बार मंत्रित कर कन्या के हाथ में देवे एवं कोई प्रश्नाक्षर लिखवायें या बुलवायें। क्षत्रिय हो तो नदी का नाम, ब्राह्मण हो तो नदी का नाम, वैश्य हो तो देवता और शूद्र को फल के नाम बुलवाना चाहिए।

जो ऊपर कहे नव अक्षरों में कोई एक अक्षर लिखें या बोले तो उस अक्षर वाले भाग में शल्य है ऐसा समझना चाहिये।

यदि इन नौ में से कोई अक्षर नहीं आवे तो शल्यरहित भूमि जानना।

(1)	व	पूर्व दिशा	डेढ हाथ नीचे	मनुष्य की हड्डी	मरण कारक
(2)	क	अग्निकोण	दो हाथ नीचे	गधे की हड्डी	राज्य भय
(3)	च	दक्षिण दिशा	कमर बराबर नीचे	मनुष्य हड्डी	मृत्युकारक
(4)	त	नैऋत्य कोण	डेढ हाथ नीचे	कुत्ता की हड्डी	संतान सुखनाश
(5)	ए	पश्चिम	दो हाथ नीचे	बालक की हड्डी	परदेश गमन
(6)	ह	बायव्य कोण	चार हाथ नीचे	कोयला	मित्रनाश
(7)	स	उत्तर दिशा	कमर बराबर नीचे	ब्राह्मण की हड्डी	दरिद्र कारक
(8)	प	ईशान कोण	डेढ हाथ नीचे	गाय की हड्डी	धननाश
(9)	ज	मध्यभाग	छाती बराबर नीचे	अतिक्षार कपाल	मृत्युकारक
				केश लोहा आदि	

पू.		
प	व	क
उ	स	ज
वा.	ह	ए

प.

- यदि दूसरे भी कोई शल्य देखने में आवंत तो उन्हें निकालकर भूमि शुद्धि करके मंदिर/गृह निर्माण करें।
- प्रतिष्ठासार संग्रह में लिखा है कि मनुष्य प्रमाण जमीन खोदने के बाद मकान निर्माण में दोष नहीं, किन्तु जिनालय निर्माण के लिये जल निकलने पर्यन्त ही देख लेना चाहिए।
- शल्य निकालने के लिए जल, पाषाण निकलने तक एवं पुरुष प्रमाण भूमि खोदकर शल्य को निकालें परंचात् जिनालय निर्माण कार्य प्रारंभ करें शल्य रहित भूमि सुखदायक है।
- शल्य होने पर हीनता, राज्यभय, रोगोत्पत्ति बलेश पशु हानि धनहानि

- अकालमरण, दुःस्वप्न, पागलपन आदि उपद्रवों से ग्रसित होता है। इसलिए देवालय मकान आदि में शल्य दोष नहीं होना चाहिए।
5. शल्य सूचना - देवालय की भूमि में, वेदी में, गृहभूमि में, प्राङ्गण में, देहरी के नीचे और दरवाजे आदि में शल्य हो अथवा यजमान अपने पास में शल्य-पदार्थों को रखे हो तो उन्हें शीघ्र दूर कर देना चाहिए।

✓ प्राक्षिर: शयने विद्याद दक्षिणे सुखसंपदः ।
पश्चिमे प्रबला चिन्ता हानिमृत्यु तथोत्तरे ॥

पूर्व की तरफ सिर करके सोने से विद्या लाभ और दक्षिण में सुख सम्पत्ति का लाभ, पश्चिम में चिन्ता तथा उत्तर की तरफ सिर करके सोने से हानि व मृत्यु मिलती है।

वास्तुविज्ञान का विषय आज बहुत महत्वपूर्ण है। इसका ज्ञान जन सामान्य को होना चाहिए, इसके लिए यह पुस्तक सरल एवं सुगम है। पं. सनतकुमार, विनोदकुमार जैन, रजवाँस ने इसका संयोजन/सम्पादन कर श्रेष्ठ कार्य किया है। इसे मैंने देखा है इसका विषय, वास्तु ज्ञान की प्रारंभिक जानकारी के लिए उपयोगी है।

आर. के. जैन

वास्तु शिल्पकार

मुम्बई - 78

दिनांक 19/01/04

खण्ड - 2

गृह वास्तु

द्वार का विस्तार -

1. गृह की चौड़ाई जितने हाथ हो, उतने ही अंगुल मान कर उसमें साठ अंगुल और मिला देने चाहिए। ये कुल जितने अंगुल हो उतनी द्वार की ऊँचाई बनाना चाहिए - यह मध्यम माप है।
2. घर की चौड़ाई जितने हाथ हो उतने ही अंगुलों में पचास अंगुल और मिला देने से जो संख्या आवें उतनी ही द्वार की ऊँचाई रखना कनिष्ठ माप है।
3. घर की चौड़ाई जितने हाथ हो उतने ही अंगुलों में सत्तर अंगुल और मिला देने से जो संख्या आवें उसे ही द्वार की ज्येष्ठ ऊँचाई समझना चाहिए।
4. दरवाजे की ऊँचाई जितने अंगुल हो उसके आधे भाग में ऊँचाई के 16 वें भाग की संख्या को मिला देने से जो लब्ध प्राप्त हो उतनी दरवाजे की चौड़ाई रखना श्रेष्ठ है।
5. दरवाजे की कुल ऊँचाई के बराबर तीन भाग करके उसमें से एक भाग अलग कर देना चाहिए शेष दो भाग के बराबर चौड़ाई मध्यम माप कहा जाता है।
6. यदि दरवाजे की ऊँचाई के अर्धभाग प्रमाण चौड़ाई की जाय तो वह कनिष्ठ मान वाला द्वार जानना चाहिए।
7. गृह की ऊँचाई के तीन भाग करके उसमें से एक भाग पृथक करके शेष दो भाग प्रमाण द्वार की ऊँचाई रखनी चाहिए और ऊँचाई के प्रमाण से आधा प्रमाण द्वार के विस्तार का रखना चाहिए।

द्वार की दिशा -

1. पूर्व दिशा के द्वार को विजय द्वार, दक्षिण द्वार को यम द्वार, पश्चिम के द्वार को मकर द्वार और उत्तर द्वार को कुवेर द्वार कहते हैं। ये सभी नामानुसार फलदायी हैं।

वास्तु विज्ञान

55

2. पूर्व द्वार - पूर्व द्वार उत्तम माना जाता है पूर्व दिशा के आठ भागों में से तीसरे एवं चौथे भाग में द्वार बनाना चाहिए।
3. दक्षिण द्वार - दक्षिण द्वार अशुभ माना जाता है।
4. पश्चिम द्वार - पश्चिम द्वार मध्यम फलदायी होता है।
5. उत्तर द्वार - उत्तर द्वार शुभ फलदायी होता है।
6. ईशान द्वार - ईशान द्वार होने से ऐश्वर्य, लाभ, वंशवृद्धि, सुसंस्कारित संतान तथा शुभ फलदायी प्राप्त होता है।
7. आग्नेय द्वार - आग्नेय द्वार होने से स्त्री रोग, अग्निभय, आत्मघात की संभावना होती है।
8. नैऋत्य द्वार - नैऋत्य द्वार होने से अकाल मरण, आत्मघात, भूतप्रेर बाधा आदि अशुभ घटनाएँ होने की संभावना रहती है।
9. वायव्य द्वार - वायव्य द्वार होने से वास्तु एक हाथ से दूसरे हाथ में अंतरित हो जाती है धन व्यय तथा मानसिक अशांति रहती है।
10. पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर इन चारों दिशाओं के ढीक मध्यवर्ती द्वार, पूर्ववर्ती आग्नेय का द्वार उत्तरवर्ती वायव्य का द्वार, दक्षिण एवं पश्चिम वर्ती नैऋत्य दिशा के द्वार शुभफल नहीं देते। उच्च स्थान के द्वार शुभ होते हैं।
11. पूर्व और उत्तर दिशावर्ती ईशान का द्वार, दक्षिण दिशावर्ती आग्नेय का द्वार और पश्चिम दिशा वर्ती वायव्य दिशा का द्वार शुभ फल देते हैं।
12. दक्षिण दिशा में कभी भी द्वार नहीं बनाना चाहिए। बनाना आवश्यक हो तो मध्य भाग में नहीं बनाना चाहिए।

द्वारों का शुभाशुभ

1. आगे से पीछे तक के सब द्वार सम सूक्ष्म में होना चाहिए।
2. द्वार के किवाड़ यदि अन्दर के भाग में ऊपर की ओर झुके हुए हों तो अर्धनाश के कारण और यदि बाहर के भाग में ऊपर की ओर झुके हुए होंगे तो व्याधि के कारण होंगे।

3. अपने आप बन्द होने वाले किवाड़ व्याधि-पीड़ा और कुलनाश के कारण और टेंडे-मेंदे किवाड़ गृह पति के मरण के कारण होगें।
4. अपने आप खुलने वाले किवाड़ गृह पति को दुःखी एवं उन्मादी बनाते हैं।
5. मुख्य घर का द्वार और प्रवेश एक ही दिशा में अर्थात् घर के सम्मुख प्रवेश हो तो उसे उत्सङ्ग प्रवेश कहते हैं। यह उत्सङ्ग प्रवेशद्वार सौभाग्यकारक, विजयकारक और धन-जन एवं धान्य वृद्धिकारक है।
6. मुख्य घर का द्वार प्रवेश करते समय दाहिनी ओर हो अर्थात् प्रथम प्रवेश करने के बाद दायीं ओर जाकर मुख्य घर में प्रवेश हो तो उसको पूर्ण बाहु प्रवेश कहते हैं। ऐसे प्रवेश वाले गृह में रहने वाला धन-जन आदि से निरन्तर सुखी रहता है।
7. यदि मुख्य घर का द्वार प्रवेश करते समय बायी ओर ही अर्थात् प्रथम प्रवेश करने के बाद बायीं ओर जाकर मुख्य द्वार में प्रवेश हो तो हीनबाहु प्रवेश कहते हैं। ऐसे घर में रहने वाला दरिद्री, या स्त्री के आधीन, या सन्तान आदि से दुःखी अथवा व्याधियों से निरन्तर पीड़ित रहेगा।
8. यदि मुख्य घर की दीवार घूम कर मुख्य घर के द्वार में प्रवेश होता है तो उसे प्रत्यक्ष अर्थात् पृष्ठभङ्ग प्रवेश कहते हैं। इसका फल भी हीनबाहु प्रवेश सदृश अत्यन्त निन्दनीय है।
9. यदि द्वार के बीच में बराबर सामने पीपल का वृक्ष हो तो बीच में दिवाल खड़ी कर देने से दूसरी वास्तु का दोष नहीं लगता।
10. यदि द्वार के बीच में बराबर सामने बड़ का वृक्ष हो तो बीच में दीवाल खड़ी कर देने से अन्य वास्तु का दोष नहीं लगता है।
11. राजमहल भी चारों दिशाओं में चार द्वार और चार गवाक्ष शुभ होते हैं किन्तु अन्य दूसरे लोगों के घरों में इस प्रकार के द्वार आदि शुभ नहीं होते।
12. गृह की आजू-बाजू में अर्थात् दाहिने और बायें भाग में तथा पीछे की दीवाल में द्वार नहीं रखना चाहिए। यह गृह पति को रोगी और कुलनाश करता है।

13. एक मंजिल वाले घर में पीछे दरवाजा नहीं रखना चाहिए। यो तीन आदि मंजिलों पर पीछे दरवाजा रखने में दोष नहीं है।
14. अपने नियत परिमाण से द्वार बड़ा हो तो राजा का भय छोटा हो तो चोरों का भय और तुख्य होता है।
15. परिमाण से अधिक चौड़ा द्वार, क्षुधा बेदना का कारण होता है।
16. मुख्य द्वार परिमाण से अधिक संकरा अशुभ होता है।
17. दूसरे खण्ड का द्वार, नीचे के खण्ड के द्वार के ठीक ऊपर आवें तो शुभ नहीं है।
18. दक्षिण पश्चिम के यदि गृह द्वार के कपाटों में छिद्र होना सर्वनाश का कारण है।
19. त्रिकोण द्वार से स्त्री को पीड़ा होती है।
20. स्त्र्याकार द्वार से धन का नाश होता है।
21. धनुषाकार द्वार से गृह कलह होती है।
22. दरवाजा खोलते या बन्द करते समय आवाज निकलना अशुभ एवं भय उत्पन्न करते हैं।
23. सामने के दरवाजे की अपेक्षा पीछे का दरवाजा कुछ कम ऊँचाई का होना चाहिए।
24. दरवाजे में दरार पड़ने से दरिद्रता आती है।
25. दरवाजे के ऊपर कोई दाग दुखी करता है।
26. चौराखट के नीचे देहली अवश्य होना चाहिए।
27. घर में आने जाने का एक ही दरवाजा होने से परेशानियाँ बढ़ती हैं।
28. घर का मुख्य प्रवेश द्वार सुन्दर एवं सुसज्जित होने पर समृद्धि दायक तथा आनंदकारी होता है। प्रवेश द्वार के समान अन्य द्वारों की सजावट न करें।
29. पूरे गृह में दरवाजे सम संख्या में होना चाहिए किन्तु दशक में न हो। अर्थात् 2, 4, 6, 8, 12, 14, 16 हो किन्तु 10, 20, 30 न हो।

30. घर के दरवाजे के सामने, पेड़ खम्भा कुंआ, कीचड़ नाली, कचरे का ढेर, गाय बांधने का खूंटा दूसरे के घर का द्वार घर का कोना नहीं होना चाहिए।
31. दरवाजा एक ही लकड़ी का बनवाएँ। लोहे का दरवाजा, हो व चौखट लकड़ी की ऐसा नहीं होना चाहिए।
32. मुख्य दरवाजे का रंग सफेद हल्का नीला या हल्का हरा होना चाहिये स्लेटी या काले रंग का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

खिड़कियाँ -

1. पूर्व और उत्तर की खिड़कियाँ शुभ होती हैं।
2. दक्षिण और पश्चिम में यथा आवश्यक खिड़कियाँ बनाई जा सकती हैं।
3. खिड़कियाँ दीवाल में ऊपर नीचे न बनाकर समसूत्र में बनाना चाहिए।
4. खिड़कियाँ अन्दर की ओर खुलने वाली शुभ होती हैं।
5. खिड़कियों के काँच पूटे हुए नहीं होना चाहिए।
6. खिड़कियाँ सम संख्या में होना चाहिए एवं दो पल्ले की बनायें एक या तीन की नहीं।
7. खिड़कियों की सज्जा मुख्य द्वार जैसी न करे सादा पेन्ट लगाए। ऊपर की मंजिल की खिड़की सज्जा सकते हैं?
8. (दक्षिण पश्चिम में) घर के पीछे की दीवाल में खिड़की दरवाजा न लगाए तो श्रेष्ठ है।
9. सामने एवं आजू-बाजू खिड़कियाँ शुभ होती हैं।
10. सामने वाले मकान की खिड़की से नीची अपनी खिड़की न हो।
11. मकान के ऊपर की मंजिल में सुन्दर खिड़की रखना अच्छा है। परन्तु दूसरे के मकान की खिड़की के नीचे भाग में आ जाये तो ऐसा नहीं करना चाहिए।
12. पहली मंजिल की पिछली दीवाल में कभी भी खिड़की आदि नहीं रखना चाहिए।

परकोटा -

1. परकोटे की दीवाल में दो दरवाजे एक पूर्व एक उत्तर की ओर बनाना चाहिए।
2. परकोटे में एक द्वार परेशानियों का कारण होता है।
3. यदि परकोटे का द्वार अपने आप बंद होता है तो भय उत्पन्न करने वाला होता है।
4. परकोटे की दक्षिण और पश्चिम दीवाल ऊँची तथा अधिक मोटी होना चाहिए।
5. परकोटे की पूर्व, उत्तर एवं ईशान दिशा की दीवाल ऊँची होना अशुभ है।
6. परकोटे की आग्नेय नैऋत्य एवं वायव्य दिशा की दीवाल ऊँची होना शुभ है।
7. परकोटे की दीवाल पत्थर या ईटों से बनाएँ। दीवाल पर प्लास्टर एवं पुताई करें।
8. गृह की दीवाल तथा परकोटे की दीवाल में अन्तर रखना आवश्यक है।
9. गृह एवं परकोटे की दीवाल एक समझकर निर्माण से धन हानि होती है।
10. वास्तु एवं परकोटे की दीवाल में कम से कम एक मीटर का अन्तर होना चाहिए। ताकि चारों ओर जाया जा सके।
11. परकोटे के अन्दर उत्तर पूर्व की तरफ ज्यादा जबकि दक्षिण पश्चिम में कम खुला स्थान हो।
12. वास्तु के पश्चिम और दक्षिण की ओर खाली जगह न रहने दे उस पर कोई निर्माण कार्य करें।

रसोई घर -

1. उत्तर दिशा का रसोई घर भयंकर आपत्ति का कारण है अर्थात् होता है।
2. ईशान कोण का रसोई घर मानसिक त्रास देता है अनेक आपत्तियाँ आती हैं।

3. आग्नेय कोण का रसोई घर शुभ होता है।
4. पश्चिम दिशा में बनाया गया रसोई घर मध्यम फल दायक होता है।
5. वायव्य कोण का रसोई घर प्रगति रोकता है मतान्तर से शुभ होता है।
6. पूर्व दिशा का रसोई घर मध्यम फल दायी होता हैं परेशानियाँ बढ़ती हैं।
7. दक्षिण दिशा में रसोई घर अशुभ होता है।
8. नैऋत्य कोण का रसोई घर अशुभ होता है चोरी का भय रहता है।
9. भवन के ठीक मध्यम भाग में रसोई गृह नहीं बनाना चाहिए।
10. रसोई घर की दीवारों और फर्श का रंग लाल, गुलाबी, नारंगी या पीला होना चाहिए किन्तु काला रंग नहीं होना चाहिए।
11. मतान्तर से रसोई घर में काला पत्थर शुभ और अचेत पत्थर अशुभ होता है।
12. रसोई घर के पूर्व पश्चिम भाग में एक-दो खिड़की अवश्य होना चाहिए दक्षिण दिशा में भी खिड़की रखी जा सकती है।
13. रसोई घर का प्रवेश द्वार दक्षिण में नहीं बनाना चाहिए। प्रवेश द्वार कोने में नहीं होना चाहिए।
14. रसोई घर में मुख्य पट्टी पूर्व दिशा या दक्षिण दिशा में आग्नेय कोण पर्यन्त बनाना चाहिए। यह पट्टी पूर्व या दक्षिण की दीवार से सटाकर नहीं बनाना चाहिए। एक इंच या तीन इंच जगह छोड़ना चाहिए।
15. रसोई घर की उत्तर या पूर्व दिशा में रसोई बनाने संबंधी कम बजन वाली वस्तुएँ रखी जा सकती हैं।
16. रसोई वनाने वालों का मुख पूर्व में होना चाहिए।
17. रसोई घर की ईशान दिशा में फिज कदापि नहीं रखना चाहिए।
18. आग्नेय और वायव्य दिशा में फिज रखना चाहिए।
19. नैऋत्य कोण में फिज रखने से बिंगड़ता रहेगा अतः दीवाल के एक फुट दूर रखना चाहिए।
20. रसोई के आग्नेय कोण में ही चूल्हा गैस आदि अग्नि से संबंधित सर्व साधन रखने चाहिए।

12. यदि आग्नेय कोण में चूल्हा नहीं रखा जाय तो उसे खाली रखना चाहिए।
 13. पूर्व और दक्षिण की दीवारों के पास (दोनों भुजाओं) की कुछ इंच जगह छोड़ कर ही आग्नेय कोण में चूल्हा आदि रखना चाहिए।
 14. रसोई के बर्टन एवं मिक्सी आदि सामान रसोई घर की दक्षिण दिशा में रखना चाहिए।
 15. मसाले के डिल्बे एवं दाल चाँचल आदि धान्य के डिल्बे तथा रसोई संबंधी अन्य आवश्यक वस्तुएँ रसोई घर की दक्षिण पश्चिम दिशा में रखना चाहिए।
 16. हाथ धोने का स्थान ईशान कोण में होना चाहिए।
 17. यदि रसोई घर में भण्डार बनाना हो तो नैऋत्य में बनाना चाहिए। दक्षिण पश्चिम में भी बना सकते हैं।
 18. भोजन करने का स्थान पश्चिम में होना चाहिए किन्तु भोजन करने वाले का मुख पूर्व में होना चाहिए।
 19. भोजन बनाने वाली महिलाओं को भोजन बनाने वाले स्थान पर बैठकर कभी भोजन नहीं करना चाहिए। इससे ब्रह्म-सिद्धि का नाश होता है।
 20. रसोई घर या भोजन शाला के ठीक सामने स्नानगृह और शौचालय नहीं बनाना चाहिए।
 21. रसोई घर में किवाड़ अवश्य होना चाहिए। किवाड़ रहित रसोई गृह ब्रह्म-सिद्धि का हरण करते हैं।
 22. बाहर के द्वार से चूल्हा नहीं दिखाना चाहिए। हानि की संभावना होती है।
 23. रसोई घर में निरर्थक/अश्लील वार्तालाप नहीं करना चाहिए।
- भोजन गृह -**
1. भोजन शाला भवन की पश्चिम दिशा में अति शुभ है। उत्तर और पूर्व दिशा में भी बनाया जा सकता। यह सामान्य शुभ होता है।
 2. भोजन कक्ष का द्वार भवन के प्रमुख प्रवेश द्वार के सामने नहीं होना चाहिए।

3. भोजन कक्ष का द्वार, पूर्व उत्तर अथवा पश्चिम दिशा में होना चाहिए।
4. भोजन कक्ष का रंग, पीला, केशरी अथवा फीका नीला होना चाहिए।
5. भोजन शाला से जुड़ा हुआ शौचालय अति अशुभ है।
6. भोजन शाला में प्रसन्नता देने वाले नैसर्गिक चित्र लगाने चाहिए।
7. भोजन कक्ष में कुर्सी टेबिल, स्टेंड आदि वस्तुएँ धातु की अपेक्षा लकड़ी की रखना चाहिए।
8. भोजन कक्ष में टेबल सम चौरस या लम्ब चौरस ही होना चाहिए। गोल, घट्कोनी, अण्डाकृति एवं अन्य किसी आकार की नहीं होना चाहिए।
9. भोजन शाला में पीने का पानी ईशान कोण में रखना चाहिए और हाथ आदि धोने का स्थान पूर्व या उत्तर दिशा में होना चाहिए।
10. दक्षिण दिशा में मुख करके भोजन कभी नहीं करना चाहिए।

बैठक गृह -

1. बैठक गृह का द्वार उत्तर या पूर्व दिशा में होना शुभ है। नैकृत्य और आग्नेय में कदापि नहीं होना चाहिए।
2. बैठक गृह का ढलान उत्तर पूर्व की ओर होना चाहिए।
3. देलीविजन आग्नेय, दक्षिण या पश्चिम में ही रखना चाहिए। ईशान कोण में कदापि नहीं रखना चाहिए। वायव्य कोण में रखने पर वह अधिक चलेगा और नैकृत्य कोण में रखने से बार-बार बिगड़ेगा। देलीफोन नैकृत्य और वायव्य कोण में नहीं रखना चाहिए। पूर्व या उत्तर दिशा में ही रखना चाहिए।
4. बैठक गृह में स्त्रियों, पशु पक्षियों, महाभारत एवं झगड़ते बच्चों के चित्र नहीं लगाना चाहिए।
5. कूलर आग्नेय में न रखकर पश्चिम में रखना चाहिए।
6. बैठक गृह में फर्नीचर समचौरस या लम्ब चौरस होना चाहिए।
7. बैठक गृह में सफेद, पीला, नीला या हरा रंग करना चाहिए। लाल और काला नहीं करना चाहिए।

तिजोरी कक्ष -

1. मुख्य गृह की उत्तर दिशा में तिजोरी कक्ष शुभ होता है।
2. तिजोरी कक्ष का द्वार उत्तर में होना चाहिए। दक्षिण, आग्नेय, नैकृत्य और वायव्य दिशा में इस कक्ष का द्वार कदापि नहीं होना चाहिए।
3. तिजोरी कक्ष अन्य कक्षों से नीचे स्थान पर नहीं बनाना चाहिए।
4. तिजोरी कक्ष में लाल नीले एवं काले रंग की टाइल्स नहीं लगानी चाहिए। श्वते या पीले रंग की टाइल्स लगाना चाहिए।
5. तिजोरी कक्ष में दीवालों पर पीला रंग होना धन वृद्धि का कारण है।
6. तिजोरी कक्ष की पूर्व अथवा उत्तर की दिशा में कुछ ऊँचाई पर खिड़की होना चाहिए।
7. तिजोरी कक्ष में एक द्वार किन्तु किवाड़ दो होना चाहिए।
8. तिजोरी कक्ष समचौरस या आयताकार ही होना चाहिए।
9. तिजोरी कक्ष के द्वार में देहली अवश्य होना चाहिए।
10. तिजोरी, तिजोरी कक्ष में दक्षिण दीवाल की ओर दीवाल से एक इच्छ जगह छोड़कर रखनी चाहिए।
11. तिजोरी द्वार के सामने नहीं रखना चाहिए।
12. तिजोरी बीम के नीचे एवं उसके छज्जे पर तिजोरी नहीं रखना चाहिए।
13. तिजोरी या कपाट का मुख उत्तर दिशा में होना चाहिए।
14. बिना पाये की तिजोरी में धन रखने से हानि होती है।
15. तिजोरी किसी ऊँचे स्थान पर नहीं रखना चाहिए। समतल स्थान पर रखनी चाहिए।
16. तिजोरी हिलना नहीं चाहिए। लकड़ी का चिप लगाकर सम करना चाहिए।
17. दक्षिण दिशा में तिजोरी रखने की सुविधा न हो तो पश्चिम में रखना चाहिए। जिससे उसका मुख पूर्व में रहे।
18. तिजोरी में या उसके आसपास कहीं भी जाला नहीं लगना चाहिए। दरिद्रता होती है।

19. तिजोरी के ठीक सामने किसी देवता की फोटो नहीं लगाना चाहिए।
20. तिजोरी में बर्तन, वस्त्र, सूटकेश इतर सामग्री आदि रखकर उसे भारी नहीं करना चाहिए। यदि कुछ सामान रखना पड़े तो नीचे के खण्ड में रखना चाहिए।
21. यदि तिजोरी का मुख उत्तर में हो तो सोना, चांदी एवं अलंकारादि दक्षिण में रखे और यदि तिजोरी का मुख पूर्व में हो तो पश्चिम में रखना चाहिए।
22. तिजोरी में कोई भी सुगंधित पदार्थ नहीं रखना चाहिए।
23. तिजोरी के उपरिम खण्ड में धन पैसा नहीं रखना चाहिए।

अध्ययन कक्ष -

1. अध्ययन कक्ष का द्वार ईशान, पूर्व या उत्तर में रखना चाहिए।
2. अध्ययन कक्ष में पूर्व, पश्चिम या उत्तर में खिड़की रखना शुभ है।
3. अध्ययन कक्ष में शौचालय कदापि नहीं रखना चाहिए।
4. अध्ययन कक्ष की दीवालों पर श्वेत, बादामी, फीका हरा या फीका आकाशी रंग करना चाहिए।
5. किंवाड़, टेबल आदि पर जो रंग हो वही रंग सर्वत्र होना लाभदायक होता है। बादामी से प्रतिभा वृद्धि होती है एवं फीका आकाशी अध्यास पवं शान्ति प्रदाता है।
6. अभ्यास पुस्तकें रखने की आलमारी पूर्व या उत्तर दिशा में रखना चाहिए। वायव्य कोण में पुस्तकें रखने से पुस्तकें चोरी चली जायेगी, नैऋत्य में रखने से कभी - कभी पढ़ने का मन होगा।
7. अभ्यास कक्ष की ईशान दिशा में देवों की फोटों और पीने का पानी रखना चाहिए।
8. इस कक्ष में टी.बी. आदि प्रसाधन नहीं रखना चाहिए।
9. इस कक्ष में अश्लील एवं रागवर्धक के युद्धादिक के फोटो नहीं लगाना चाहिए।

10. इस कक्ष में भूलकर भी शयन नहीं करना चाहिए।
11. अभ्यास हेतु पूर्व या उत्तर मुख बैठे।
12. अन्य कक्षों की अपेक्षा अभ्यास कक्ष नीचा नहीं होना चाहिए।
13. इस कक्ष में भोग विलास की बातें न करें।
14. इस कक्ष में चप्पल जूते एवं मोजे पहिलकर प्रवेश न करें।

शयन कक्ष -

1. उत्तर दिशा और बैठक कक्ष के समीप शयनकक्ष बनाना शुभ है।
2. वायव्य दिशा में और देवगृह के समीप शयनकक्ष नहीं बनाना चाहिए।
3. नैऋत्य और पश्चिम दिशा में गृह स्वामी का शयनकक्ष लाभप्रद होता है।
4. नैऋत्य दिशा में छोटे बालक बालिकाओं के शयन से कलह होती है।
5. बालकों को सुलाने के लिए पश्चिम दिशा शुभ है।
6. पूर्व दिशा के शयन कक्ष में अविवाहित बालक बालिकाओं को और अतिथियों को सुलाना कथंचित् शुभ होता है।
7. मुख्य घर की आग्नेय दिशा में सोने से अनावश्यक खर्च एवं कलह होती है।
8. ईशान कोण में शयन अशुभ होता है। रोग, संकट एवं प्रगति रुक्ती है। इस दिशा में शयन करने वाली कन्याओं की शादी विलम्ब से होती है।
9. पूर्व दिशा में पैर करके सोने से समृद्धि प्राप्त होती है।
10. पश्चिम दिशा में पैर करके सोने से आध्यात्मिक भावनाओं में वृद्धि होती है।
11. उत्तर दिशा में पैर करके सोने से धन वृद्धि एवं ऐश्वर्य प्राप्त होता है।
12. किसी परिस्थिति में दक्षिण की ओर पैर करके नहीं सोना चाहिए।
13. समाधि के समय साधु एवं मरणोन्मुख व्यक्ति के पैर दक्षिण की ओर करना चाहिए।
14. आग्नेय एवं नैऋत्य दिशा में पैर करके कभी नहीं सोना चाहिए।
15. गृह के मध्य भाग में शयन कक्ष कदापि नहीं बनाना चाहिए।
16. मध्य में ऊँचा और चारों ओर ढलान वाला शयन कक्ष कभी नहीं बनाना चाहिए।
17. शयन कक्ष की छत भी ढलान वाली नहीं होना चाहिए।

18. शयन कक्ष का द्वार पूर्व, उत्तर या पश्चिम में होना चाहिए।
19. शयन कक्ष की पश्चिम में बड़े रोशनदान एवं पूर्व, उत्तर में छोटी-छोटी खिड़कियाँ होना चाहिए।
20. शयनकक्ष में पीला और सफेद मार्बल नहीं लगाना चाहिए।
21. इस कक्ष में नीला, हरा, तम्बाखू संग, फीका गुलाबी या बादामी संग भरना चाहिए।
22. नैऋत्य दिशा के शयनकक्ष की नैऋत्य दिशा में भारी सामान एवं वस्त्र रखना चाहिए।
23. बिस्तर नैऋत्य, दक्षिण, या पश्चिम में रखना चाहिए।
24. इस कक्ष की पूर्व या पश्चिम दिशा में पढ़ने लिखने का सामान रखना चाहिए।
25. दी.बी. हीटर एवं अग्नि संबंधी विजली आदि का सामान अपेक्षय दिशा में रखना चाहिए।
26. शयनकक्ष में तिजोरी नहीं रखना चाहिए रखना पड़े तो दक्षिण दिशा में रखें।
27. घर में दरवाजे पर, खाली जमीन पर, जूँठन वाली जगह पर शयन नहीं करना चाहिए।
28. शयनकक्ष में ये झुकियाँ होना चाहिए।
29. शयन कक्ष में भयानक, विकराल, वीभत्स अथवा धृणास्पद चित्र नहीं लगाकर मनोहरी एवं सुरुचिपूर्ण चित्र लगाएँ।
30. यदि मकान में एक और मंजिल हो तो ऊपर की मंजिल में उसी दिशा में शयन करें।
31. देव, गुरु अग्नि गौ और धन इनके सामने पैर रखकर, उत्तर में पैर रखकर नंगे होकर गीले पैर कभी शयन नहीं करना चाहिए।
32. सोते समय पैर मुख्य द्वार की ओर नहीं होना चाहिए।
33. यदि भवन में एक से अधिक मंजिले हैं तो गृह स्वामी का शयन कक्ष ऊपरी मंजिल पर होना चाहिए।
34. शयन में मुख के सामने प्रकाश नहीं पड़ना चाहिए।

35. पूर्वी या उत्तरी दिशा वाले कमरे का शयन कक्ष स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है।
 36. शयन कक्ष में पलंग के ठीक ऊपर छत में कोई बीम/गाटर आदि नहीं होना चाहिए।
 37. ड्रेसिंग टेबल उत्तर दिशा में पूर्व की ओर रखना चाहिए।
 38. यदि सोते समय सिर दक्षिण या पश्चिम दिशा में करना हो तो पलंग का एक सिरा दक्षिण या पश्चिम की दीवार को छूता रहे।
 39. शयन कक्ष में अध्ययन करने की टेबल लाइब्रेरी पुस्तकों की अलमारी आदि पश्चिम अथवा नैऋत्य में होना चाहिए।
 40. घड़ी पूर्व या पश्चिम की दीवार पर लगावे। उत्तर की दीवार पर ठीक नहीं है।
- आईना (दर्पण) -**
1. मुख्य द्वार के सामने दर्पण न लगायें।
 2. द्वार के सामने दीवार होने पर वहाँ गहराई का आभास देने वाले चित्र लगाना ठीक है।
 3. शयनकक्ष में आईना बिल्कुल नहीं होना चाहिए।
 4. पलंग के सामने आईना बिल्कुल नहीं होना चाहिए। इससे पति-पत्नि के संबंधों में तनाव रहता है।
 5. विपरीत दिशा के आईनों को ढक के रखना चाहिए या अलमारी के अंदर दर्पण लगाना चाहिए।
 6. डाइनिंग टेबल को प्रतिबिंबित करने वाला दर्पण सद्भास्य में चूंदि करता है।
 7. भोजन बनाने वाले गैस सिलेंडर, चूल्हा अथवा स्टोव को प्रतिबिम्बित करने वाला दर्पण जान लेवा हो सकता है।
 8. मकान/शयनकक्ष की छत पर आईना नहीं लगाना चाहिए।
 9. मकान की उत्तर या पूर्व वाली दीवाल पर दर्पण लगाना चाहिए।
 10. दिशा/स्थान की अपेक्षा दर्पण की ऊर्जा परिवर्तित होती है।

स्नान गृह -

1. स्नान गृह पूर्व दिशा में शुभ होता है।
2. स्नान गृह के जल का प्रवाह पूर्व, ईशान अथवा उत्तर में होना चाहिए।
3. संलग्न स्नान गृह वाले कक्षों में स्नान गृह पूर्व या उत्तर में होना चाहिए।
4. यदि दो कमरों में समानांतर स्नान गृह बनाना हो तो एक दूसरे से लगकर बनाएँ।
5. वास्तु के ईशान में स्नानगृह बनाना हो तो ध्यान रहे कि ईशान कोण बन्द न हो जाये।
6. स्नान गृह के ईशान कोण में कभी भी वायतर नहीं लगाना चाहिए।
7. पूर्व दिशा की ओर मुख करके स्नान करना चाहिए।
8. स्नानघर का रंग ग्रे, सफेद या गुलाबी रखना चाहिए।

औषधालय -

1. औषधालय का मुख्य द्वार पूर्व या उत्तर में होना चाहिए।
2. प्रतीक्षालय आग्नेय कोण में होना चाहिए।
3. पूछताछ का कमरा दक्षिण दिशा में होना चाहिए।
4. चिकित्सा कक्ष उत्तर में हो, परंतु चिकित्सक का मुँह पूर्व या उत्तर में होना चाहिए।
5. शल्य क्रिया कक्ष पश्चिम में रखें, किन्तु शल्य क्रिया के समय रोगी का मुख दक्षिण में तथा डाक्टर का मुँह उत्तर में या पूर्व में होना चाहिए।
6. एक्स-रे कार्डियोग्राम तथा सोनोग्राफी कक्ष आग्नेय में रखें।
7. आपातकालीन सुरक्षा कक्ष वायव्य कोण में रखना चाहिए।
8. रोगियों के पलंग दक्षिण में वायव्य कोण में रखना चाहिए।
9. औषधियों का काउंटर पश्चिम या दक्षिण में रखें।
10. परिचारिका (नर्स) या अन्य सहायकों के आवास, आग्नेय या वायव्य कोण में रखना चाहिए।
11. स्नानगृह पूर्व या उत्तर में हो तो ठीक है।
12. शौचालय दक्षिण या पश्चिम में होना चाहिए।
13. छत पर पानी की टंकी पश्चिम या दक्षिण में रखें।

औषधि कक्ष -

1. औषधिकक्ष उत्तर ईशान के बीच होना चाहिए।
2. औषधि सेबन के समय रोगी का मुँह उत्तर में होना चाहिए।
3. रोगी को दक्षिण की ओर सिर करके शयन करना चाहिए।
4. रोगी का शयन स्थल दक्षिण नैऋत्य और पश्चिम में होना चाहिए।
5. रोगी के शयन स्थल पर खुली हवा, प्रकाश आदि का ध्यान रखना चाहिए।

शौचालय -

1. पश्चिमी वायव्य या दक्षिणी आग्नेय दिशा में शौचालय शुभ होता है।
2. शौचालय नैऋत्य में नहीं बनाना चाहिए। यदि बनाना हो तो यहाँ शौच कूप न बनायें।
3. शौचालय का द्वार पूर्व या आग्नेय में होना शुभ है।
4. शौचालय में बैठते समय मुख उत्तर में होना चाहिए।
5. मुखपूर्व में कभी नहीं होना चाहिए।
6. रात्रि में मल मूत्र विसर्जित करते समय मुख दक्षिण में होना चाहिए।
7. सूर्य के सामने बैठकर मलमूत्र विसर्जित न करें।
8. मध्य भाग और ईशान कोण में शौचालय घातक होता है।

शौच कूप -

1. शौच कूप उत्तर - पूर्व की ओर बनाना चाहिए।
2. पूर्व दिशा में शौचालय आग्नेय की ओर बनाना चाहिए।
3. उत्तर में शौच कूप वायव्य और उत्तर के बीच शुभ होता है।
4. शौचकूप नैऋत्य, आग्नेय, पश्चिम, वायव्य, ईशान तथा दक्षिण दिशा नहीं बनाना चाहिए।
5. शौच कूप दक्षिण-पश्चिम की तरफ नहीं बनाना चाहिए।

तलघर (गर्भगृह) -

1. एक ही तलघर बनावें। यदि भूमि विशाल हो तो दो तलघर बना सकते हैं।
2. गृह स्वामी के निवास के नीचे तलघर न बनावें।

वास्तु विज्ञान

3. भवन की दक्षिण, पश्चिम और नैऋत्य दिशा में तलघर नहीं बनाना चाहिए।
4. तलघर भवन की पूर्व, उत्तर और ईशान दिशा में ही शुभ होते हैं।
5. समकोण तलघर ही शुभ होते हैं।
6. त्रिकोण और पंचकोण वाले तलघर अशुभ होते हैं।
7. समतल तलघर शुभ होते हैं।
8. सम्पूर्ण वास्तु के नीचे तलघर नहीं होना चाहिए।
9. तलघर की ईशान दिशा में खुला भाग एवं द्वार होना शुभ होता है।
10. तलघर की ईशान दिशा में अलमारी बनाना निरन्तर श्री वृद्धि का कारण है।
11. ईशान कोण स्थित तलघर में यदि बोरिंग अथवा पानी की टंकी बनाई जाती है तो वहाँ ही शुभ है।

व्यापार के लिए तलघर -

1. भवन की उत्तर दिशा में बने तल घर शुभ होते हैं इनमें व्यवसाय संबंधी भारी वस्तुएं दक्षिण और पश्चिम में रखी जावें और व्यापारी उत्तराभिमुख बैठकर व्यापार करे तो विशेष लाभ होता है।
2. वायव्य कोण के तलघर में यदि बड़े-बड़े रोशनदान हो या मुख्य द्वार या खिड़कियाँ उत्तर दिशा में हो तो व्यापार अच्छा चलेगा किन्तु व्यवसायी वीमार रहने लगेगा।
3. नैऋत्य कोण में बने तलघर से व्यापार करने से कभी लाभ नहीं होता है।
4. आग्नेय कोण के तलघर में अग्नि से संबंधित व्यवसायों के अतिरिक्त अन्य किसी व्यवसाय में सफलता नहीं मिलती।
5. जिस तलघर में सूर्य की किरणें नहीं जाती वे तलघर व्यापार के योग्य नहीं हैं।

दहलान -

1. मुख्य गृह की पूर्व अथवा उत्तर दिशा में ही दहलान बनाना चाहिए।
2. दक्षिण एवं पश्चिम की ओर दहलान नहीं बनाना चाहिए।
3. दहलान का कोई भी कोना कटा एवं गोल नहीं होना चाहिए।

वास्तु विज्ञान

4. दहलान की छत मुख्य गृह की छत से कुछ नीची होनी चाहिए उस छत पर चढ़ार आदि डालना चाहिए।
5. दहलान की छत का ढलान पूर्व या उत्तर दिशा में ही होना चाहिए।
6. दहलान में रोशनदान और खिड़कियाँ अधिक रखना चाहिए।
7. दहलान में बैठक की व्यवस्था पश्चिम एवं दक्षिण दिशा की ओर ही करना चाहिए।
8. दहलान में यदि दूल्हा डालना हो तो पूर्व-पश्चिम डालना चाहिए।
9. दहलान में चक्की एवं ऊखल कदापि नहीं रखना चाहिए।

सीढ़ियाँ -

1. गृह की मुख्य सीढ़ियाँ, दक्षिण, पश्चिम या नैऋत्य दिशा में बनाना चाहिए।
2. ईशान दिशा में सीढ़ियाँ बनाने से धन हानि, व्यवसाय हानि एवं कर्ज वृद्धि होती है।
3. गृह के मध्य भाग में सीढ़ियाँ कदापि नहीं बनाना चाहिए।
4. सम्पूर्ण गृह की परिकमा करने वाली सीढ़ियाँ नहीं बनाना चाहिए।
5. गोल एवं चक्राकार सीढ़ियाँ नहीं बनाना चाहिए।
6. पश्चिम से चढ़कर पूर्व में प्रवेश हो या दक्षिण से चढ़कर उत्तर में प्रवेश वाली सीढ़ियाँ होना चाहिए।
7. ऊपर जाने वाली एवं तल घर में जाने वाली सीढ़ियाँ एक नहीं होना चाहिए।
8. पूजा गृह, रसोई गृह, तिजोरी गृह, भण्डार गृह, अनुपयोगी वस्तु गृह में से मुख्य सीढ़ियाँ नहीं बनाना चाहिए।
9. बैठक कक्ष की दक्षिण, पश्चिम या नैऋत्य दिशा में सीढ़िया बनाना श्रेष्ठ है।
10. आग्नेय या वायव्य में भी सीढ़ियाँ बनाई जा सकती हैं किन्तु बच्चों को कष्ट होता है।
11. सीढ़ियों के नीचे खाली स्थान में देव मर्ति, शास्त्र, तिजोरी एवं व्यवसायिक प्रतिष्ठान बनाना हानिप्रद होता है।
12. ऊपरी मंजिल की सीढ़ियों पर छप्पर अवश्य होना चाहिए।
13. सीढ़ियाँ हिलती हुई दूटी-फूटी एवं जोड़-तोड़ कर बनाई नहीं होना चाहिए।

- ✓ 14. सीढ़ियों का प्रदक्षिणा पूर्व घड़ी के कांटों की तरह होना चाहिए।
 ✓ 15. सीढ़ियों की संख्या विषम होना चाहिए। उसमें तीन का भाग देने से दो शेष बचना चाहिए। किन्तु प्रवेश यम स्थान पर न होकर राज पर होना शुभ होता है।

विद्यालय -

- विद्यालय की निर्माण भूमि का ढलान पूर्व दिशा की ओर होना चाहिए।
- मुख्य मार्ग विद्यालय की पूर्व अथवा पश्चिम में बहता हुआ जाना चाहिए।
- विद्यालय सम चौरस या आयताकार होना चाहिए।
- विद्यालय का मुख्य द्वार दक्षिण में कदापि नहीं होना चाहिए।
- अध्ययन कक्ष के मध्य में बीम अथवा केंची बीम नहीं डालना चाहिए।
- विद्यालय की दीवालों पर स्वेत, गुलाबी अथवा फीका नीला रंग करना चाहिए।
- विद्यालय का कार्यालय आग्नेय में एवं मुख उत्तर या पूर्व में होना चाहिए।
- प्रयोगशाला पश्चिम में एवं मुख पूर्व में होना चाहिए।
- प्रधानाध्यापक कक्ष आग्नेय, पश्चिम या नैऋत्य हो श्रेष्ठ होता है।
- सभागृह उत्तर में एवं प्रवेश द्वार पूर्व में होना चाहिए।
- ग्रन्थालय पश्चिम में उचित है।
- खेल का मंदिर पूर्व या उत्तर में होना शुभ है।
- कुआं, नलकूप ईशान में पानी की टंकी ईशान या उत्तर में शुभ होती है।
- टूट फूट सामग्री गृह नैऋत्य या पश्चिम में होना चाहिए।
- विद्या संबंधी वस्तुएं (स्टेशनरी) या अलमारी दक्षिण पश्चिम में रखें।
- शैक्षालय या स्वच्छता गृह पश्चिम या वायव्य में बनाना चाहिए।

दुकान -

- पूर्व में मार्ग और पूर्व में ही द्वार वाली दुकानें शुभ होती हैं।
- उत्तर में मार्ग हो और दुकान का मुख भी उत्तर में हो तो अति शुभ होता है।
- जिस दुकान की नैऋत्य या वायव्य दिशा में मार्ग हो और इन्हीं दिशाओं में मुख हो तो 15-20 वर्ष तक दुकान बहुत चलती है। उपरान्त व्यापार कम होता जाता है।

- पूर्व मुख दुकानों में कपड़ा, पुस्तकालय, कागज संबंधी या विद्या संबंधी वस्तुओं का व्यापार श्रेष्ठ होता है।
- पूर्व या आग्नेय मुख दुकानों में अग्नि से संबंधित वस्तुओं के व्यापार के लिए शुभ होता है।
- दक्षिण या आग्नेय मुख दुकानों में सराफा (सोना चांदी) या स्त्रियों से संबंधित सामान का व्यापार लाभदायी होता है।
- दक्षिण मुख दुकान में काले रंग की वस्तुओं (कोयला, लोहा, टायर) का व्यापार शुभ होता है।
- पश्चिम मुख दुकान में कृषि संबंधी वस्तुओं के व्यवसाय से लाभ होता है।
- पूर्व या वायव्य दिशा मुख वाली दुकानों में वाहन या सजावट आदि की वस्तुओं का व्यापार शुभ होता है।
- उत्तर मुख दुकानों में व्यापार करने से बहुत लाभ होता है।
- दुकान में ऊपर बालकनी एवं सजावट का सामान शोकेश दक्षिण पश्चिम भाग में बनाना चाहिए।
- लेन देन की टेबिल (काउंटर) दक्षिण, आग्नेय, नैऋत्य पश्चिम या वायव्य में होना चाहिए। उत्तर वा ईशान में हानिकारक होती है।
- दुकान में सामान रखने की अलमारी शोकेश लकड़ी का होना श्रेष्ठ है। लोहे या स्टील का नहीं होना चाहिए।
- दुकान में पानी पीने का घड़ा ईशान में होना चाहिए।
- स्वच्छ बोर्ड या मीटर आग्नेय कोण में होना चाहिए।
- लेन देन की टेबिल का आकार सम चौरस या लम्ब चौरस ही होना चाहिए। गोल या त्रिकोण अदृश्य होता है।
- दुकान में नगद लेन देन की खिड़की दक्षिण की दीवाल के पास रखें उसका मुख उत्तर में खुलना चाहिए अथवा पश्चिम दिशा में रखें जिससे मुख पूर्व में हो सके।
- जल्दी निकालने वाला सामान वायव्य में रखने से शीघ्र बिक जाता है और लाभ बहुत होता है।

19. दुकान में दुकानदार को पूर्व या उत्तर मुख बैठना चाहिए और ग्राहक को दक्षिण या पश्चिम मुख बैठना चाहिए।
20. दुकान में देहली अवश्य होना चाहिए।
21. दुकान की गदी पर बैठकर ताश खेलने से, कुछ खाते पीते रहने से अथवा दुकान में चलते-फिरते खाने से झूटा व्यवसाय करने से चोरी करने से अथवा गाली गलौच करने से वृद्धि-सिद्धि नष्ट हो जाती है कर्ज हो जाता है।
22. दुकान में कूलर, पंखा, हीटर, फ्रिज आदि आग्नेय दिशा में रखें।
23. दुकान में दो दरवाजे या दो शर्टर्स होने पर यदि कभी एक खोलना पड़े तो पूर्व मुख वाली दुकान का ईशान की ओर का द्वार खोले दक्षिण मुख वाली दुकान का आग्नेय की ओर का द्वार खोले पश्चिम मुख वाली दुकान का बायव्य की ओर का द्वार खोले। उत्तर मुख वाली दुकान का ईशान की ओर का द्वार खोलना शुभ होता है।
24. ✓ भगवान की तस्वीर ईशान दिशा में लगावें।
25. घर के द्वार भाग से पीछे का भाग ऊँचा अच्छा है जबकि दुकान के आगे का भाग ऊँचा होना श्रेष्ठ है।

व्यापारिक स्थलों का रंग संयोजन

1. ज्वेलरी - पीले रंग के अलावा कोई भी रंग
2. पुस्तक एवं ग्रीटिंग कार्ड - हरा, नीला, पीला, मटमैला या गुलाबी
3. जनरल स्टोर - हल्का हरा, गुलाबी, सफेद, या हल्का बहुरंगी
4. मेडीकल स्टोर - हल्का नीला, गुलाबी
5. इलेक्ट्रॉनिक एवं इलेक्ट्रिकल्स-सपेक्ष, हल्का गुलाबी, हल्का हरा, हल्का नीला
6. कम्प्यूटर - हल्का नीला या हरा
7. अस्पताल - सफेद, हल्का हरा, हल्का पीला या हल्का नीला
8. चार्टर्ड अकाउन्टेंट - सफेद या पीला
9. व्यूटी पार्लर - लाईट ग्रे, सफेद या बहुरंगी
10. शू स्टोर - ग्रे, भूरा या सफेद

अनुपयोगी सामग्री कक्ष (कबाड़ खाना)

1. जो सामग्री प्रतिदिन काम में नहीं आती, जो बिगड़ चुकी है, खराब हो गई है या टूट-फूट गयी है ऐसी सामग्री रखने वाले कक्ष को अनुपयोगी सामग्री कक्ष (डेड स्टोर) कहते हैं।
2. अनुपयोगी सामग्री कक्ष भवन की नैऋत्य दिशा या कक्ष की नैऋत्य दिशा में बनाना चाहिये।
3. यह कक्ष अन्य कक्षों की अपेक्षा कम लंबा-चौड़ा होना चाहिये।
4. इस कक्ष की आग्नेय, ईशान एवं दक्षिण दिशा में कदापि द्वार नहीं रखना चाहिए।
5. इस कक्ष का द्वार अन्य कक्षों की अपेक्षा छोटा होना चाहिये तथा द्वार पर चढ़ार आदि धातु का एक ही किवाड़ लगाना चाहिये।
6. इस कक्ष के नीचे तलघर कदापि नहीं बनाना चाहिये।
7. इस कक्ष में खिड़की रखना लाभप्रद नहीं है यदि आवश्यक हो तो पश्चिम दिशा में एक ही खिड़की रखनी चाहिये।
8. इस कक्ष में पीला या सफेद रंग नहीं करना चाहिये। नीला आदि कोई भी गहरा रंग करना चाहिये फिरका नहीं।
9. कक्ष की दीवालों में दरार आदि आ जाने पर अथवा चूना आदि गिर जाने पर शीघ्र ही टीक कराना चाहिये।
10. इस कक्ष में देव मूर्ति या देवों के चित्र नहीं रखना चाहिये। अगरबत्ती आदि नहीं लगानी चाहिये।
11. इस कक्ष में सोना चाँदी आभूषण नवीन बस्त्र एवं महत्वपूर्ण कापी कागज तथा पत्र आदि कभी नहीं रखना चाहिये।
12. इस कक्ष में कोई भी शुभ कार्य नहीं करना चाहिये।
13. इस कक्ष में बीमार आदमी को नहीं सुलाना चाहिये।
14. यह कक्ष किसी को किराये से नहीं देना चाहिये। इस कक्ष में जो भी रहेगा, वह दुखी रहेगा।

15. इस कक्ष में पानी नहीं रखना चाहिए एवं पानी का कोई संबंध नहीं रहना चाहिए।
16. इस कक्ष के द्वार में खड़े होकर जोर-जोर से बोलना, हँसना, गाना एवं गपशप आदि नहीं करना चाहिए।
17. इस कक्ष का नैकृत्य कोण खाली नहीं छोड़ना चाहिए।

कारखाना -**भूखण्ड**

1. भूखण्ड का ईशान भाग कटा हुआ न हो।
2. ईशान भाग में भारी सामान न रखे न भारी निर्माण करें।
3. वायव्य दिशा बन्द न रखें।
4. नैकृत्य कोण सदा 90° समकोण का ही रखें।

परकोटा

1. पूर्व एवं उत्तर में परकोटा नीचा रखना चाहिए।
2. दक्षिण पश्चिम में ऊँचा रखें।
3. तार लगाना हो तो उत्तर और पूर्व में लगा सकते हैं किन्तु दक्षिण एवं पश्चिम में पत्थर या इंट की दीवाल बनाना चाहिए।

धरातल

1. नैकृत्य में धरातल सारे भूखण्ड से ऊँचा रखें।
2. ईशान, उत्तर और पूर्व में नीचा होना चाहिए।
3. दक्षिण एवं पश्चिम में छत का झुकाव उत्तर एवं पूर्व की अपेक्षा कम होना चाहिए।

द्वार

1. कारखाने का मुख्य द्वार पूर्व उत्तर या ईशान में रखना चाहिए।
2. मुख्य प्रवेश द्वार नैकृत्य में कदापि न रखे।
3. मुख द्वार पूर्व आग्नेय, दक्षिण नैकृत्य, पश्चिम नैकृत्य, उत्तर वायव्य में नहीं रखना चाहिए।
4. निकास द्वार उत्तर या पश्चिम में होना चाहिए।

प्रशासनिक कार्यालय

1. प्रशासनिक कार्यालय पूर्व या उत्तर में रखना चाहिए। पश्चिम में भी रखा जा सकता है।
2. बैठने वाले का मुख उत्तर या पूर्व में होना चाहिए।
3. कार्यालय की ऊँचाई मुख्य भवन से कम होना चाहिए।
4. कम्प्यूटर, ए.सी. कूलर आदि आग्नेय में रखना चाहिए।

मशीनें

1. भारी मशीनें दक्षिण पश्चिम में लगाना चाहिए।
2. हल्की मशीनें पूर्व एवं उत्तर में लगा सकते हैं किन्तु ईशान में नहीं लगाना चाहिए।

तैयार माल

1. वायव्य दिशा में रखना चाहिए इससे माल शीघ्र बिकता है।
2. अर्ध निर्मित माल दक्षिण पश्चिम में रखना चाहिए।
3. कच्चा माल दक्षिण पश्चिम एवं नैकृत्य में रखा जा सकता है।
4. स्टोर रूम नैकृत्य में होना चाहिए।
5. निरुपयोगी एवं खराब सामग्री नैकृत्य में रखें।

बजन करने का काँटा (तराजू)

1. बजन काँटा पूर्व उत्तर में लगाया जा सकता है।
2. तुलाइ ज्यादा होती हो तो दक्षिण में लगाना शुभ है।

कर्मचारी कक्ष

1. कर्मचारी कक्ष वायव्य या आग्नेय में रखना चाहिए।
2. ईशान में कर्मचारी कक्ष न बनावें।
3. मुख्य भवन से छूते हुए नहीं होना चाहिए।

पार्किंग स्थल/गैरिज

1. वायव्य कोण में होना चाहिए।
2. कम्पाउड वाल से लगाकर न हो। थोड़ा अन्तर रखें।
3. पूर्व मुख्यगृह में गैरिज दक्षिण-पूर्व दिशा में पूर्व की ओर बनावें।

4. दक्षिण मुख गृह में गैरिज दक्षिण-पश्चिम में पश्चिम दिशा बनावें।
5. पश्चिम मुख गृह में गैरिज दक्षिण-पश्चिम में पश्चिम की ओर बनावें।
6. उत्तर मुख गृह में गैरिज उत्तर-पश्चिम में उत्तर की ओर बनावें।

जल व्यवस्था

1. जल व्यवस्था ईशान दिशा में करना चाहिए।
2. पूर्व उत्तर में भी कर सकते हैं।
3. बोरबेल, कुआं भूमिगत जल टांका ईशान कोण में बनावें।

शौचालय

1. शौचालय वायव्य या आग्नेय में बनाना चाहिए।
2. बायलर, ट्रान्सफार्मर, विद्युत आपूर्ति के उपकरण, जनरेटर, विजली की सम्म्भा आदि पूर्व आग्नेय में स्थापित करना चाहिए।
3. आग भट्ठी आदि आग्नेय कोण में होना चाहिए।
4. चिमनी भी आग्नेय में रखना उपयुक्त है।

वृक्ष एवं वाटिका

1. बगीचा या पुष्प वाटिका पूर्व या उत्तर में लगावें।
2. ऊँचे वृक्ष दक्षिण या पश्चिम में लगाना चाहिए। किन्तु इतनी दूरी रखें जिससे दोपहर में इनकी छाया कारखाने पर न पड़े।

द्वारपाल कक्ष

1. यदि पूर्व ईशान में द्वार हो तो द्वारपाल कक्ष दक्षिण में और यदि उत्तर ईशान में द्वार हो तो द्वारपाल कक्ष पश्चिम में होना चाहिए।

लिपट

1. लिपट कभी मध्य में न लगायें।
2. दक्षिण या नैऋत्य में भी नहीं लगाना चाहिए।
3. उत्तर, ईशान या पूर्व में लिपट लगाना उत्तम है।

धन धान्य भंडार कक्ष

1. धन धान्य यदि जमीन के नीचे रखना है तो वायव्य दिशा श्रेष्ठ है।
2. यदि जमीन केऊपर हो तो नैऋत्य दिशा उत्तम है।
3. यदि मकान का मुख दक्षिण या पश्चिम की ओर हो तो भूमिगत अन्न भंडार सामने के हिस्से नहीं रखे।
4. धन धान्य का भंडार वायव्य दिशा में ही होना चाहिए।

भंडार गृह

- ✓(1) भंडार गृह भवन के दक्षिण एवं पश्चिम दिशा में बनाया जाना चाहिए।
- (2) अन्न भंडार गृह, गृह की उत्तर अथवा वायव्य कोण में बनाना चाहिए।
- (3) भारी सामान दक्षिण-पश्चिम की दीवार पर दक्षिण की ओर रखना चाहिए।
- (4) पूर्व और उत्तर में हल्के सामान रखें। इस कक्ष का दरवाजा उत्तर या पूर्व दिशा में होना चाहिए।
- (5) भंडार गृह में तेल, धी, मिठ्ठी का तेल एवं गैस सिलेंडर आदि आग्नेय कोण में रखना चाहिए।
- (6) इस कक्ष का दरवाजा उत्तर या पूर्व दिशा में होना चाहिए।

कुआं

1. वास्तु के मध्य भाग में कुआं खोदने से धन का नाश होता है।
2. पूर्व दिशा में कुआं धन सम्पत्ति एवं ऐश्वर्यदायक होता है। ठीक पूर्व में न होकर कुछ उत्तर की तरफ होना चाहिए।
3. आग्नेय में कुआं होने से पुत्र नाश एवं विपत्तियां आती हैं।
4. दक्षिण दिशा का कुआं मानसिक तनाव एवं स्त्री नाशक होता है।
5. नैऋत्य दिशा में कुआं से गृह स्वामी का धरण होता है।
6. पश्चिम दिशा का कुआं सम्पत्तिदायक होता है।
7. वायव्य दिशा का कुआं शत्रु वृद्धि करता है।
8. उत्तर दिशा का कुआं सुख प्रदाता होता है।

9. ईशान दिशा का कुआं सब प्रकार से शुभ होता है।
10. गृह के मूल्य द्वार के सामने कुआं अशुभ होता है।

प्रसूति कक्ष

1. प्रसूति कक्ष नैकृत्य दिशा में उत्तम होता है।
2. मतान्तर से पूर्व या पूर्वी ईशान भी श्रेष्ठ माना गया है।

पालतू पशुओं का निवास

1. पालतू पशुओं का निवास बायब्य दिशा में होना चाहिए।

सेवक गृह

1. सेवकों के लिए गृह पिछवाड़े में अलग बनाना चाहिए।
2. सेवक गृह दक्षिण या पश्चिम भाग में दीवाल से सटकर बनाना चाहिए।
3. उत्तर या पूर्व में बनाना पड़े तो दीवाल से दूर हटकर बनाना चाहिए।

पानी की टंकी

1. भूमिगत पानी की टंकी उत्तर पूर्व अथवा ईशान में सर्वश्रेष्ठ होती है।
2. यदि पानी की टंकी ऊपर बनाना हो तो बायब्य या उत्तर में बनाना चाहिए।
3. आग्नेय दिशा में कभी भी पानी की टंकी नहीं बनाना चाहिए।

वास्तु विस्तार एवं क्रय विचार

1. जमीन के पूर्व, उत्तर या ईशान दिशा में जमीन मिलती हो तो अवश्य लेना चाहिए।
2. दक्षिण पश्चिम की भूमि बिना मूल्य भी नहीं लेना चाहिए।
3. ईशान में शौचालय या रसोईघर हो, ऊँचा भाग हो या ईशान कोण कटा होने से वास्तु बिकने का प्रसंग आता है।
4. दोषपूर्ण वास्तु नहीं खरीदना चाहिए।

वास्तु किराये पर देना

1. वास्तु का कुछ भाग किराये से देना हो तो दक्षिण या पश्चिम का भाग किराये से देना चाहिए।
2. मकान का ईशान भाग कभी भी किराये से नहीं देना चाहिए।

3. किरायेदार को दक्षिण या पश्चिमी भाग किराये से देने पर यदि वह खाली कर दे तो मालिक को उत्तर पूर्वी भाग छोड़कर दक्षिण पश्चिमी भाग में आ जाना चाहिए अर्थात् दक्षिण पश्चिम भाग खाली नहीं छोड़ना चाहिए।

4. वास्तु दोषों का जितना प्रभाव स्वामी पर पड़ता है उतना ही प्रभाव किरायेदार पर पड़ता है।

अशुभ परिहार/अपरिहार

परिहार -

1. गृह के आगे, पीछे या बाजू में कहीं भी किसी प्रकार के गड़े हो उन्हें शीघ्र भर दें।
2. मकान के सामने कचरे का ढेर हो कीचड़ जमा रहता हो या गन्दा पानी निरन्तर जमा रहता हो उसे ठीक करवा लेना चाहिए।
3. ईशान कोण में रसोई घर, स्टोर रूम, शयन कक्ष हो उसे तुरन्त खाली करके देव चित्र लगा दें।
4. गृहस्थी का भारी सामान पूर्व, उत्तर या ईशान में रखा हो उसे दक्षिण पश्चिम या नैकृत्य में रख देना चाहिए।
5. नैकृत्य कोण खाली हो तो भारी सामान रखना चाहिए।
6. घर के भीतर आग्नेय, दक्षिण, नैकृत्य या बायब्य दिशा में नल लगा हो तो घर के उत्तर, पूर्व या ईशान भाग में पानी की छोटी मोटी टंकी बनाकर अन्य नलों से उसका जल वितरण करें।
7. शास्त्राज्ञा के विपरीत रसोई घर दक्षिण या पश्चिम में बना हो तो रसोई घर के आग्नेय कोण में चूल्हा रखना चाहिए।
8. शयन कक्ष विपरीत दिशा में हो और परिवर्तन भी सुलभ न हो तो अविवाहित कन्याओं को ईशान में एवं विवाहित युगल को पूर्व दिशा में कभी नहीं सोना चाहिए।
9. तिजोरी का मुख उत्तर में होना चाहिए।

- (14) नीले रंग और जानवरों की आकृति की वस्तुयें नैऋत्य कोण में रखें।
 (15) सजावट के लिए पुस्तकें ईशान में रखें।
 (16) चमकीली एवं सजीव वस्तुओं को मध्य-पूर्व में और भारी एवं स्थाई वस्तुयें मध्य-पश्चिम में रखें।

बगीचा -

- (1) छोटे पौधों को उत्तर-पूर्व में लगाना चाहिए। यदि उत्तर-पूर्व में अभाव हो तो कहीं भी लगाये जा सकते हैं।
 (2) ऊंचे वृक्ष नैऋत्य में लगाये, ईशान में न लगाये।
 (3) छोटे पौधों के गमले वायव्य में रखें। गमलों को एक ही रंग से पोतना चाहिए।
 (4) यदि उद्यान ईशान में है तो भूमिगत टेंक बनायें नहीं तो पानी टेंक भूमि के ऊपर रखें।
 (5) भू-खण्ड की नैऋत्य दिशा में उद्यान नहीं बनाना चाहिए।
 (6) मुख्य द्वार के समीप रखे जाने वाले पौधे कटीले नहीं होना चाहिए।
 (7) निजी उद्यान में कुर्सियाँ नैऋत्य में पूर्वाभिमुख रखें।

प्रसादो मण्डपश्चैव, विना शास्त्रेण यः कृतः ।

विपरीतं विभागेषु, योऽन्यथा विनिवेशयेत् ॥१२१॥

विपरीतं फलं तस्य, अरिष्टं तु प्रजायते ।

आयु-नाशो मनस्तापः, पुत्र-नाशः कुलक्षयः ॥१२२॥

शास्त्रग्रन्थान के विना यदि देवालय, मण्डप, गृह, दूकान और तल भाग आदि का विभाग किया जाएगा तो उसका फल विपरीत ही मिलेगा, अरिष्ट होगा, असमय में आयु का नाश, पुत्रनाश, कुल-क्षय और मनस्ताप होगा।

स्पष्ट - 3**देवालय वास्तु****मंदिर वास्तु शुभाशुभ -**

- नगर या ग्राम की नैऋत्य दिशा में उच्च स्थल पर बनाया हुआ मंदिर चतुर्मुखी शुभता प्रदान करता है।
- मंदिर परिसर के नैऋत्य में बना हुआ मंदिर भी शुभप्रद होता है।
- नगर की आनेय दिशा में उच्च स्थल पर एवं नगर के मध्यभाग में निर्मित मंदिर की चारों दिशाओं में प्रवाहित मार्ग भी शुभता का सूचक है।
- जिन मंदिरों की पश्चिम दिशा में पहाड़ हो और ईशान का स्थल नीचा हो वह शुभ है।
- जिन मंदिरों पर उत्तर ईशान से आने वाला मार्ग समाप्त होता है वह मंदिर नित्य ही पूजादि धर्मानुषानों से सुरोभित रहेगा।
- यदि कोई मंदिर दक्षिण दिशा की अंतिम सीमा पर उत्तराभिमुख होकर स्थित है तो अतिशुभ है, कारण कि दक्षिण की ओर प्रवेश मार्ग नहीं है।
- मंदिर के ईशान कोण में कुआं, बावड़ी पुंकरिणी या तालाब हो तो मंदिर अनेक प्रकार की शुभता प्रदान करता है।
- टीले पर स्थित मंदिर में पहुँचने के लिये सीढ़ियाँ उत्तर ईशान में निर्मित हो अर्थात् भक्त जन उत्तरते समय दक्षिण से उत्तर ईशान की ओर नीचे आवे तो शुभ है।
- जिस मंदिर का नैऋत्य भाग उन्नत एवं भारी होगा उसमें असाधारण आय होगी।
- जिस मंदिर पर पश्चिम नैऋत्य का मार्ग समाप्त होगा वह मंदिर आय से रहित होगा।
- जिस मंदिर का स्थल पूर्व - आनेय सड़क की ओर बृद्धिंगत हो, मंदिर आनेय की ओर झुका हो। जिनालय की उत्तरी दीवाल से सटकर गर्भस्थल से ईशान की ओर से ऊपर जाने की सीढ़ियाँ जा रही हों और मंदिर के वायव्य में कुआं हो तो वह मंदिर कुछ वर्षों में नष्ट हो जाता है।

12. मंदिर के प्रांगण की दक्षिण दिशा अथवा पश्चिम दिशा में नैऋत्य से आनेय की ओर ढलान हो तो वहाँ के भक्तों को व्याधियों का अनायास भाजन बनना पड़ेगा।
13. मंदिर के परिसर के बाहर भी यदि दक्षिण दिशा में परिसर स्थल से निचले भाग में खेत आदि हो तो हानिप्रद है।
14. मंदिर प्रांगण के भीतर यदि उत्तर की अपेक्षा दक्षिण भाग नीचा है तो मंदिर एवं समाज निर्धनता में दुखी रहेगी।
15. मंदिर परिसर में मंदिर की नैऋत्य दिशा में गन्दा पानी एकत्र होता है अथवा गन्दे पानी के लिए कोई गहड़ किया है तो बहुत अशुभ है।
16. मंदिर के परिसर के नैऋत्य, दक्षिण और आनेय के भाग नीचे हो, उत्तर का भाग उन्नत हो और वायव्य कोण में कुआं हो तो मंदिर अवज्ञा का केन्द्र बना रहेगा अर्थात् समाज धर्म से विमुख होती जावेगी अथवा लोग व्यापार हेतु बाहर चले जायेंगे।
17. मंदिर की छहार दीवारी के ईशान कोण को फुलवाड़ी आदि के निमित्त मिट्टी डालकर भी यदि उन्नत कर दिया जायेगा तो वह मंदिर की वृद्धि रोक देगा।
18. जिस मंदिर का नैऋत्य भाग नीचा हो वहाँ की समाज में दुर्घटनाएँ होती हैं।
19. मंदिर के ईशान कोण में मंदिर से ऊँचा भवन या मंजिल बनाना अपमृत्यु का कारण है।
20. पूर्व-आनेय दिशा की ओर से मंदिर में प्रवेश करना अनिष्टकारक है।
21. पश्चिम - नैऋत्य दिशा में मंदिर में प्रवेश एवं निर्गम का मार्ग अशुभ फल देता है।
22. मंदिर की आनेय में कुआं, वायव्य में सरोवर और नैऋत्य में प्रवेश अनिष्टकारी है।
23. मंदिर की आनेय दिशा का कुआं चोरी, रोग और अग्निदाह आदि विपदायें पैदा करता है।
24. मंदिर की आनेय दिशा में स्थित सरोवर 'जल विहीन' होता है उसी प्रकार वहाँ के मंदिर की स्थिति होगी।

25. मंदिर की पश्चिम दिशा में जल से भरी बावड़ी भी अशुभ है।
26. मंदिर की उत्तर दिशा खाली होना चाहिए।
27. मंदिर ईशान और नैऋत्य में तिरछा हो तो दिल्ली मूढ़ का दोष नहीं माना जाता है। तीर्थ स्थानों के मंदिरों आदि में मूढ़ अमूढ़ दोष नहीं माना जाता है।
28. गर्भालय और मंदिर से बाहर निकलते समय अपनी पीठ जिनेन्द्र देव को न दिखावें।
29. मंदिर में लोहा नहीं लगाना चाहिए।
30. पुराने मंदिर की कोई भी सामग्री नये मंदिर में नहीं लगाना चाहिए।
31. मंदिर स्वच्छ एवं छों जल से बनवाना चाहिए।
32. मंदिर बनवाते समय स्त्रियों को काम पर नहीं रखना चाहिए।
33. अन्यायोपार्जित धन से जिन मंदिर और मूर्तियां नहीं बनवानी चाहिये।
34. मद्य, मांस और मधु खाने वालों से मूर्तियां और मंदिर नहीं बनवाना चाहिये।
35. मंदिर शिल्प शास्त्र का उल्लंघन करके नहीं बनवाना चाहिए।
36. बिना शिल्पकार का मंदिर नहीं बनवाना चाहिए।
37. मंदिर का चूना उत्तर गया हो, दीवालों पर या छत पर मण्डलाकार लकड़िए हो गई हो, मकड़ी के जाले लग गये हो, कीलें लगी हो, पोल हो गई हो, संधि दिखने लगी हो तो महादोष माना गया है।
38. मंदिर की दीवारों में पीछे की तरफ सुई की नोंक के बाबर छिद्र हो तो महान अशुभ माना गया है उसमें राक्षसों का निवास होता है।
39. मंदिर यदि कर हीन अर्थात् दायें बायें छोटे बड़े हो तो महान अशुभ होते हैं। ऐसा स्थान स्त्रीनाश, शोक सन्ताप और धन क्षय करने वाले होते हैं।
40. यदि मंदिर जी में हड्डी, माँस, चर्बी आदि गिर जावे, सूक्ष्म आदि प्रवेश कर जावे, चांडाल आदि अस्पृश्य मनुष्य का प्रवेश हो जावे, बच्चे मल-मूत्र कर देवें, महिलायें असमय में मंदिर जी में अशुद्ध हो जावे तो अशुद्ध पदार्थों को दूर करके पूरा मंदिर धुलवा कर सफेदी करना चाहिए। तत्पश्चात् विधि पूर्वक अभिषेक, शांतिधारा, जप हवन आदि अनुष्ठान पूर्वक शुद्धि करके ध्वजारोहण करना चाहिए।

41. देवालय का चूना उत्तर गया हो, दीवालों/छत पर मंडलाकार लकड़ियों हो गई हो, मकड़ी के जाले लग गए हो, कीलें लगी हों, पोल हो गई हो, संधि दिखने लगी हो तो दोष माना गया है।

द्वार -

1. मूल्य प्रवेश द्वार पूर्व या उत्तर में रखना चाहिये।
2. मंदिर का मूल्य द्वार दक्षिण से कभी नहीं रखना चाहिये।
3. अन्य द्वारों की अपेक्षा मंदिर का प्रमुख द्वार अपेक्षा कुत ऊँचा और विशेष सुसज्जित होना चाहिये।
4. लोहे का द्वार नहीं होना चाहिये।
5. मूल नायक की दृष्टि द्वार के शुभ स्थान से निकलना चाहिये।
6. मूल नायक की दृष्टि के सामने कोई वृक्ष नहीं आना चाहिये। यह शूल कहलाता है।
7. मूलनायक की दृष्टि विना किसी व्यवधान के प्रमुख प्रवेश द्वार से निकलती हुई मार्ग तक जाना चाहिये।
8. मंदिर में यदि एक द्वार रखना हो तो पूर्व दिशा में रखे, दो द्वार पूर्व पश्चिम में रखें तीन द्वार रखना हो तो दो द्वारों के बीच मुख्य द्वार रखें। उत्तर दक्षिण द्वार नहीं बनाना चाहिए।
9. मंदिर का मूल्य द्वार मूलनायक प्रतिमा के ठीक सामने होना चाहिए।
10. मंदिर का मूल्य द्वार एवं गर्भालय का मूल्य द्वार समसूत्र में होना चाहिये।
11. दरवाजे के किवाड़ यदि अन्दर के भाग में ऊपर की तरफ झुके होंगे तो यह मंदिर के लिए धननाशक होंगे।
12. यदि दरवाजे के किवाड़ बाहर के भाग में ऊपर की ओर झुके होंगे तो समाज में कलह होगी।
13. दरवाजा बन्द करते समय या खोलते समय आवाज करते हो तो अशुभ है।
14. दरवाजा भीतर की ओर ही खुलना चाहिए। अन्यथा रोग होंगे।
15. यदि दरवाजा स्वयमेव खुले या बन्द होवे तो वह अशुभ है इससे व्याधि पीड़ा बंशहानि आदि के संकट समाज में आ सकते हैं। लेकिन दक्षिण व पश्चिम का लघु दरवाजा हो इसमें कोई विरोध नहीं है।

16. यदि द्वार पश्चिम का हो तो चौखट पश्चिम की बनावें। दरवाजे यदि लकड़ि के हो तो लकड़ी की चौखट लगायें।
 17. बिना द्वार का मंदिर कदापि न बनावें। यह समाज के लिए अशुभ है।
 18. दरवाजे एवं चौखट एक ही लकड़ी के बनावें। लोहे के दरवाजे नहीं बनावें।
 19. दरवाजे का आकार चार खूट वाला आयताकार रखें।
 20. त्रिकोण सूप के आकार का वर्तुलाकार दरवाजा न बनायें।
 21. दरवाजे दो पलड़े के ही बनायें। एक पलड़े का दरवाजा न बनायें।
 22. मंदिर का द्वार लम्बाई से आधा चौड़ा रखना चाहिये। चौड़ाई बढ़ाना हो तो लम्बाई का सोलहवां भाग बढ़ाना चाहिये।
 23. ऊँचाई से आधा विस्तार उत्तम मान, उत्तम विस्तार का चतुर्थांश कम मध्यम मान एवं मध्यम मान का चतुर्थांश कम कनिष्ठ मान होता है। जैसे - द्वार की ऊँचाई 80 अंगुल विस्तार 40 अंगुल उत्तममान, इस उत्तम मान के विस्तार का चतुर्थांश ($40/4$) = 10 अंगुल कम करने पर $4-10=30$ अंगुल का मान, इस मध्य मान के चतुर्थांश = $30/4=7\frac{1}{2}$ को कम कर देने से $30 - 7\frac{1}{2} = 22\frac{1}{2}$ अंगुल विस्तार कनिष्ठ मान है।
 24. यदि द्वार मान में हीन हो तो नेत्र रोगकारक है।
- गर्भगृह -**
1. गर्भगृह सम चौरस होना चाहिए।
 2. समचौरस भूमि के दस भाग करने चाहिए। उनमें से दो - दो भाग की दोनों दीवाली की मोटाई रखें शेष छह भाग का गर्भगृह बनाना चाहिये।
 3. इटों के मंदिर में दीवालों की मोटाई गर्भगृह के विस्तार के चतुर्थ भाग रखें।
 4. पाषाण के मंदिर में गर्भ गृह की दीवाल की मोटाई गर्भगृह के विस्तार के पाँचवे भाग प्रमाण रखना चाहिए।
 5. धातु और रन्नों से बने हुये मंदिर में गर्भगृह की दीवाल की मोटाई गर्भगृह के विस्तार के दशवें भाग प्रमाण ही रखनी चाहिए।

6. लकड़ी के मंदिर में गर्भ गृह की दीवाल को लकड़ी की मोटाई से गर्भगृह के विस्तार के छठे भाग अथवा सातवें भाग रखी जाना चाहिये।
7. गर्भगृह की ऊँचाई तीन प्रकार की कही गई है।
 - (क) गर्भगृह के विस्तार में विस्तार का षष्ठांश जोड़ देने पर जो लब्ध प्राप्त हो उतनी ऊँचाई गर्भगृह की रखना चाहिए।
 - (ख) गर्भगृह की ऊँचाई गर्भगृह से सवागुनी रखें।
 - (ग) गर्भगृह के विस्तार से डेढ़ गुनी ऊँचाई रखना चाहिये।
8. गर्भालय के पीछे कोई कमरा नहीं बनाना चाहिये।
9. मंदिर में पंखा नहीं लगाना चाहिये इससे चुम्बकीय वातावरण का विघटन हो जाता है।
10. गर्भालय में घण्टा नहीं लगाना चाहिये। बाहर लगाना चाहिये।
11. जिनविम्ब के अलावा अन्य सामान गर्भालय में नहीं रखना चाहिए।
12. पूजन आदि का द्रव्य, पूजन के वर्णन, अंग पोछना अग्रबद्धी एवं माचिस आदि गर्भालय में नहीं रखना चाहिये।
13. पूजा, अभिषेक, करने वालों के अतिरिक्त अन्य किसी को गर्भालय में नहीं जाना चाहिये।
14. गर्भगृह में किसी प्रकार के चित्र नहीं लगाना चाहिए। मंदिर में योग्य स्थान पर साधु संतों के चित्र लगाये जा सकते हैं।
15. यदि गर्भगृह एक दो तीन अंगुल भी लम्बा हो तो वह यम चुल्ली नाम का गर्भगृह है। यह स्वामी के गृह का विनाश करने वाला है अतः गर्भगृह वर्गाकार बनावें।
16. प्रत्येक मंदिर में गर्भगृह अवश्य बनाना चाहिए।
17. गर्भगृह की ऊँचाई के तीन भाग करके दो भाग गर्भगृह का द्वार बनाना चाहिए।

वेदी -

1. गर्भगृह में वेदी परिक्रमा का स्थान छोड़कर बनाना चाहिये।
2. वेदी ठोस चौकोर होना चाहिये।
3. वेदी के ऊपर बीम या गार्ड नहीं होना चाहिये।
4. वेदी के पीछे अलमारी, खिड़की, झरोखा या द्वार कदापि न बनायें। यदि सुई की नोंक के बराबर छिद्र होता हो तो उस जिनालय में पूजा अनुष्ठान निष्फल होता है।
5. मंदिर में एक ही तल में सम संख्या में वेदी न बनायें।
6. वेदी पर कटनी एक या तीन ही बनायें।
7. वेदी का निर्माण पूर्ण या उत्तराभिमुख ही करें।
8. गर्भगृह के दो भाग करें दीवाल की ओर के आधे भाग के पाँच करें। दीवाल के प्रथम भाग में यक्ष, दूसरे में देवी, तीसरे में जिन चौथे में ब्रह्म एवं पाँचवें में शिव स्थापना करें।
9. या गर्भगृह के छह भाग करें उसमें से दीवाल के पास का एक भाग छोड़कर पाँचवें भाग में सब देवों की स्थापना करें।
10. या गर्भगृह के आठ भाग करें दीवाल के पास का एक भाग छोड़कर सातवें भाग में सब देवों की स्थापना करें।
11. गर्भगृह एवं वेदी मंदिर के बीचों बीच ही बनावें वेदी के दायें बाये बराबर स्थान छोड़ना चाहिए। एक छोर पर वेदी नहीं बनाना चाहिए।
12. वेदी पर कलशा स्थापित करना एवं ध्वजा लगाना आवश्यक है।
13. वेदी पर लगाई गई तोरण इतनी बड़ी न हो कि उसमें प्रतिमायें ढकें।
14. वेदी की लम्बाई में चौड़ाई से किंचित भी लम्बी न हो। सम चतुरस्र ही श्रेष्ठ है।
15. गोल-वेदी अथवा कोनेकटी वेदी कदापि न बनायें।
16. मंदिर निर्माण पूर्ण होने पर वेदी खाली रखने से उस वेदी पर भूत प्रेत पिशाच तथा राक्षस निवास करते हैं। अतः प्रतिष्ठा शीघ्र करा लेनी चाहिए। मंदिर/वेदी बिना मूर्ति के नहीं रखना चाहिए।

17. दो मंजिल का जिनालय बनाया जा सकता है। दोनों तल पर वेदी बनाना हो तो प्रत्येक तल पर एक वेदी बनावें। यदि ऊपर की मंजिल पर ही वेदी बनाना हो तो नीचे की मंजिल से ठोस आधार बनाना अनिवार्य है। प्रत्येक तल पर वेदी विषम होना चाहिये।
18. फर्श से कम से कम 3 फुट वेदी की ऊँचाई होना चाहिए।
19. वेदी गणना में केवली भगवान की ही वेदी ली जाती है।
20. द्वार की ऊँचाई के आठ या नौ भाग करके एक भाग छोड़कर सात या आठ भाग के तीन भाग करें उनमें से दो भाग की खड़गासन प्रतिमा एवं एक भाग मान की वेदी बनाना चाहिये एवं द्वारमान के दो भाग वेदी तथा एक भाग मान की पचासन प्रतिमा बनाना चाहिये।

मूलनायक प्रतिमा -

1. मूल नायक प्रतिमा वेदी के ठीक मध्य में स्थापित करें।
2. मूल नायक प्रतिमा से बड़े आकार की प्रतिमा वेदी पर स्थापित न करें।
3. मूल नायक प्रतिमा का चिन्ह स्पष्ट दृष्टिगोचर होना चाहिये।
4. मूल नायक प्रतिमा के अतिरिक्त प्रतिमायें यदि स्थापित की जाती हैं तो उनमें पर्याप्त अंतर रखना अत्यन्त आवश्यक है।
5. एक प्रतिमा से दूसरी प्रतिमा के बीच प्रतिमा के मान से आधी दूरी का अन्तर करें।
6. प्रतिमा दीचाल से चिपकाकर न रखें।
7. मूल नायक प्रतिमा के नीचे अचल यंत्र स्थापित करें उसे किंचित भी विस्थापित न करें।
8. प्रतिमा के परिकर में भामण्डल के स्थान पर यंत्र या थाली नहीं लगाना चाहिये।
9. मूल नायक प्रतिमा पद्मासन आकृति में करना चाहिये।
10. मूल नायक प्रतिमा तीर्थकर की ही होना चाहिये।
11. किस तीर्थकर की प्रतिमा मूल नायक बनाना है इसके लिए मंदिर निर्माता तथा तीर्थकर के जन्म नक्षत्र का गुण मिलान अत्यन्त आवश्यक है।

12. मूल नायक प्रतिमा के नाम से ही मंदिर का नामकरण करना चाहिये।
13. हाल में जिन प्रतिमा स्थापित न करें। अपरिहार्य परिस्थितियों में भी मूल नायक प्रतिमा गर्भगृह में ही स्थापित करना चाहिये।
14. लघुकाय मूल नायक हो और दीर्घकाय आजू-बाजू प्रतिमायें हो तो मूलनायक को ऊँचे स्थान पर स्थापना करना शुभ नहीं है।
15. मंदिर में कहीं भी विराजमान किन्हीं भी भगवान की अवगाहना मूलनायक से (एक सूत भी) बड़ी नहीं होना चाहिए।
16. मूलनायक भगवान यदि पद्मासन मुद्रा में विराजमान है तो आजू-बाजू के भगवान भी पद्मासन भी होना चाहिए और मूलनायक खड़गासन मुद्रा में है तो आजू-बाजू के भगवान भी खड़गासन में होना चाहिए। इससे विपरीत होने पर शुभ फल नहीं होता।
17. वेदी में यदि तीन भगवान विराजमान करना हो तो आजू-बाजू के भगवान के नेत्र मूल नायक भगवान के कणों के अंतिम भाग या पर्यन्त या कन्धे या स्तन पर्यन्त ही होना चाहिये इससे ऊपर नीचे नहीं।
18. कोई प्रतिमा अधर (तीन गिर्हां पर) विराजमान नहीं करना चाहिये।
19. मंदिर में किसी भी स्थान पर विराजमान जिनेन्द्र भगवान के ऊपर अथवा उनके समकक्ष यक्ष, यक्षिणी क्षेत्रपाल अथवा पचावती आदि को विराजमान नहीं करना चाहिये।
20. जिनेन्द्र देव का और शासन देव आदि का अंग पोंछना (वस्त्र) एक नहीं होना चाहिये।
21. यदि प्रतिमा के अंगोपोग (मुख, नाक, कान) अत्यन्त घिस गये हो तो ऐसी प्रतिमा को विधि विधान पूर्वक संग्रहालय में रख देना चाहिये।
22. 100 वर्ष से अधिक प्राचीन प्रतिमा के उपांग खंडित हो तो भी वह पूज्य होती है परन्तु उसे मूलनायक नहीं बना सकते।
23. मूल नायक प्रतिमा पाट के नीचे स्थापित नहीं करना चाहिये।
24. मूल नायक के आजू-बाजू स्थापित तीर्थकर प्रतिमायें स्तनसूत्र में होना चाहिये।

25. मूल नायक प्रतिमा के आजू-बाजू की तीर्थकर प्रतिमाओं के घुटने आदि अवयव भी पाट/बीम के नीचे नहीं आना चाहिये।
 26. दीवाल स्थित आले या अलमारी अथवा गोदरेज की अलमारी में प्रतिमा स्थापित नहीं करना चाहिये।

जिनेन्द्रदेव की दृष्टि का विधान -

1. मंदिर के मुख्य द्वार के देहली और उत्तरंग के मध्य के नवभाग करके नीचे के छह भाग और ऊपर के दो भाग सर्वथा छोड़ देना चाहिए। शेष जो नीचे से सांतवं और ऊपर से तीसरा भाग शेष रहा उसके भी नव भाग करके उसी के नीचे से सांतवं भाग पर जिन प्रतिमा की दृष्टि रखनी चाहिए।
 2. द्वार की देहली के ऊपर के उत्तरंग से नीचे भाग तक के मध्य भाग में आठ भाग करना उनमें से उपरिम अष्टम भाग छोड़कर नीचे वाले सांतवं भाग के पुनः आठ भाग कर उपरिम एक भाग पुनः छोड़ देना चाहिए। शेष सांतवं भाग के सांतवं, पाँचवे तीसरे और पहले भाग में दृष्टि रखना चाहिये।
 3. द्वार की देहली के उपरिम भाग से उत्तरंग के नीचे भाग तक माप कर उसके दस भाग करना, ऊपर के तीन भाग और नीचे के छह भाग छोड़कर सांतवं भाग के पुनः दस भाग करना और उसके सांतवं भाग में जिनेन्द्र देव की दृष्टि रखना शुभ है।
 4. द्वार की देहली के उपरिम भाग से देहली पर्यन्त की ऊँचाई के समान बत्सीस भाग करके पच्चीसवें भाग में जिनेन्द्र देव की दृष्टि रखना शुभ है।
 5. द्वार में दृष्टि सूत्र का जो माप कहा है आँख की कीकी का सूत्र ठीक उसी माप में रखना चाहिये क्योंकि दृष्टि सूत्र के माप में एक बालाग्र का भी अन्तर रह जाने से भारी दोष उत्पन्न हो जाते हैं।
 6. जिनेन्द्र भगवान की दृष्टि सौम्य होती है यदि उसका अवरोध हो जाये तो अशुभ फल होते हैं। अतः इनकी दृष्टि दरवाजे के बाहर रास्ते पर पड़नी चाहिए।

7. दर्शन हेतु मंदिर में प्रवेश करने वाले दर्शनार्थी के द्वार के ऊपर से मूल नायक की दृष्टि का निकल जाना भी महा अशुभ है।
 8. नगर, पुर, ग्राम, तीर्थ और तपोवन (आश्रम) आदि स्थानों में यदि देव की दृष्टि अशुभ हो तो उन स्थलों का समूल नाश हो जाता है वे स्थान पुनः जीवित नहीं हो पाते।

(1) प्रतिमा विज्ञान -

- मस्तक के केशों से लेकर ठोड़ी तक 12 भाग लम्बा और इतना ही चौड़ा मुख करें। इसके तीन भाग करें -
 4 भाग ललाट 4 भाग नासिका 4 भाग मुख और ठोड़ी आठ भाग चौड़ा चार भाग ऊँचा (भौंह से केशान्त तक) अष्टमी के चन्द्रमा समान ललाट करें।
- ललाट से ऊपर उण्णीश (सहस्रार) तक 5 भाग करें।
- उण्णीश (सहस्रार) से चोटी तक 5 भाग करें।
- चोटी के ऊपर दो भाग प्रमाण किंचित ऊँची गोल चोटी करें। इस प्रकार ललाट से चोटी तक 12 भाग करें।
- चोटी से ग्रीवा के पिछले भाग तक 5 भाग प्रमाण केश करें।
- ग्रीवा से चोटी तक 12 भाग प्रमाण रखें।
- मस्तक के उभय पाश्चात्य में चार-चार भाग प्रमाण चौड़े शंख के आकार के दो हाड़ करें।
- ललाट के 4 भाग प्रमाण नीचे $4^{1/2}$ भाग प्रमाण लम्बे दोनों भवरों करें। आदि में डेढ़ भाग प्रमाण चौड़ा और अंत में एक चौथाई भाग चौड़ा करें।
- 3 भाग प्रमाण लम्बी नेत्र की सफेदी कमल पुष्प दल के समान करें।
- सफेदी के मध्य एक भाग प्रमाण श्याम तारा करें।
- श्यामतारा के बीच एक तिहाई भाग प्रमाण गोल श्यामतारिका करें। भूकुटी के मध्य से लेकर नीचे की ओर (विरौनी) तक 3 भाग प्रमाण आंखों की चौड़ाई करें।

वास्तु विज्ञान

14. नासिका के मूल में 2 भाग प्रमाण दोनों नेत्रों का अन्तराल करें।
15. ऊपर नीचे के दोनों ओंठ 2-2 भाग प्रमाण लम्बे और एक-एक भाग प्रमाण ऊँचे (मोटे) करें।
16. 4 भाग प्रमाण मुख फाड़ करें।
17. मुख के मध्य में 2 भाग प्रमाण ओढ़ों को खुला करें।
18. एक-एक भाग प्रमाण दोनों बालें मिलीं हुई करें।
19. नासिका के नीचे और ऊपर के ओंठ के मध्य में आधा भाग प्रमाण लंबी 1/3 भाग प्रमाण चौड़ी नाली करें।
20. एक भाग प्रमाण लम्बी आधा भाग प्रमाण मोटी (सृजिकणी) ओढ़ की वाम दक्षिण बगलें करें।
21. दो भाग प्रमाण चौड़ी 2 भाग प्रमाण लम्बी ठोड़ी करें।
22. दो भाग प्रमाण हनु (गाल के ऊपर के समीप का हाड़) करें।
23. हनु के मूल से चिकुंक (गालों के नीचे कानों के पास तक का हाड़) का अन्तराल आठ भाग प्रमाण करें।
- (24) 4 भाग प्रमाण लम्बे 2 भाग प्रमाण चौड़े कान करें।
- (25) 4 भाग प्रमाण पास (कान के मध्यवर्ती कडीनस और आगे पर नाली रूप खाल) लंबी करें।
- (26) पास के ऊपर की वर्तिका (गोट) 1/4 भाग प्रमाण करें।
- (27) साढ़े चार भाग प्रमाण नेत्र और कान का अन्तराल करें।
- (28) आधा भाग कान के मध्य छिद्र यवनालिका के समान करें।
- (29) दोनों कानों का अन्तराल आगे 18 भाग प्रमाण और पीछे 14 भाग प्रमाण करें।
- (30) कणों के समीप मस्तक की परिधि 32 भाग प्रमाण और ऊपर के मस्तक की परिधि 12 भाग होना चाहिए।
- (31) हाथ कोहनी का विस्तार 16/3 करें और उसकी परिधि 16 भाग करें।
- (32) कोहनी से पौंचा तक चूड़ाउतार से बाहु करें।
- (33) मुजा का मध्यभाग 13/3 भाग प्रमाण और परिधि 14 भाग प्रमाण करें।

वास्तु विज्ञान

- (34) 4 भाग प्रमाण पौंचा और परिधि 12 भाग प्रमाण करें।
- (35) पौंचा से मध्यमांगुली पर्यन्त 12 भाग प्रमाण करें।
- (36) मध्यमांगुली 5 भाग प्रमाण करें।
- (37) मध्यमांगुली से अर्ध-अर्ध पर्व हीन तर्जनी और अनामिका करें।
- (38) अनामिका से एक पर्व हीन कनिष्ठा अंगुली करें।
- (39) पौंचा से लेकर कनिष्ठा के 5 भाग प्रमाण अंतराल करें।
- (40) तर्जनी तथा मध्यमा के प्रमाण से कनिष्ठा की मीटाई अर्धभाग कम करें।
- (41) अंगुष्ठा में दो पर्व करें। अंगुष्ठ की परिधि 4 भाग करें।
- (42) शेष चार अंगुलियों में 3-3 पर्व करें।
- (43) अर्धपर्व समान पौंचों ही अंगुलियों में नख करें।
- (44) हथेली 7 भाग प्रमाण लम्बी और 5 भाग प्रमाण चौड़ी करें।
- (45) हथेली की मध्य परिधि 12 भाग प्रमाण करें।
- (46) अंगुष्ठ मूल और तर्जनी के मूल का अंतर 2 भाग प्रमाण करें।
- (47) मुजा गोल संधि जोड़ से मिली गोड़ा तक लम्बी करें।
- (48) अंगुलियों से मिलापयुक्त, स्निग्ध, ललित, उच्चय संयुक्त, शंख, चक्र, सूर्य, कमलादि उत्तम चिन्हों से संयुक्त करें।
- (49) वक्ष स्थल 24 भाग चौड़ा करें।
- (50) पीठ सहित वक्षस्थल की परिधि 56 भाग प्रमाण हो।
- (51) वक्ष स्थल के मध्य श्रीबत्स का चिन्ह है।
- (52) मुजा सहित वक्षस्थल 36 भाग प्रमाण करें।
- (53) दोनों स्तनों का मध्य अन्तराल 12 भाग प्रमाण करें।
- (54) स्तनों की चूचियाँ 2 भाग बृताकार हो।
- (55) चूचियों के मध्य में 1/4 भाग प्रमाण बीटलियाँ हों।
- (56) चूचियों के वक्षस्थल से नाभि तक 12 भाग प्रमाण अन्तराल होना चाहिए।
- (57) नाभि का मुख एक भाग प्रमाण करें।
- (58) नाभि दक्षिणावर्त रूप में गोल, मनोहर, शंख के आकार, मध्यभाग समान करें।
- (59) नाभि के मध्य से लेकर लिंग के मूल तक 8 भाग पेढ़ करें। उसमें आठ रेखायें करें।

- (62) 18 भाग प्रमाण चौड़ी कटि, उसकी परिधि 48 भाग प्रमाण करें।
 (63) तिकूणा (बैठक का हाड़) आठ भाग प्रमाण विस्तीर्ण करें।
 (64) दोनों कूलहे 6 भाग प्रमाण गोल हो।
 (65) स्कन्ध के सूत से गुदा पर्यन्त 36 भाग लम्बा और आधा भाग मोटा रीढ़ का हाड़ हो।
 (66) लिंग 4 भाग प्रमाण लम्बा मूल में दो भाग प्रमाण मोटा मध्य में एक भाग मोटा और अन्त में एक चौथाई भाग लिंग हो सर्वत्र अपनी मोटाई के प्रमाण से तिगुनी परिधि करें।
 (67) दोनों पोते आम की गुड़ली के समान उतार चढ़ाव रूप में 5-5 भाग लम्बे 4 भाग चौड़े पुष्ट बनावें।
 (68) दोनों जाँयों को 24-24 भाग प्रमाण पुष्ट बनावें मूल में 11-11 भाग मध्य में 9-9 भाग और अन्त में 7-7 भाग बनावें। सर्वत्र परिधि तिगुनी होना चाहिए।
 (69) घुटनों के नीचे टिकून्या तक लम्बी 24-24 भाग प्रमाण दोनों पीड़ियाँ बनावें।
 (70) दोनों पीड़ियाँ मूल में 7-7 भाग मध्य में 6-6 भाग और टिकून्या के पास 13/3 - 13/3 चौड़ी रखे परिधि सर्वत्र तिगुनी रखें।
 (71) दोनों पगों की चारों टिकून्यों को 1-1 भाग प्रमाण करें परिधि तिगुनी करें।
 (72) दोनों पगों के चरण तलों को 14-14 भाग प्रमाण लम्बे करें।
 (73) टिकून्यों से अंगुष्ठ के अग्रभाग तक 12 भाग प्रमाण लम्बाई हो।
 (74) टिकून्यों के पीछे एड़ी को 2 भाग करें।
 (75) एड़ी नीचे 2 भाग, बगल में कुछ कम, मध्य में ऊँची गोल हो, परिधि 6 भाग प्रमाण हो।
 (76) अंगुष्ठ तीन भाग लम्बा मध्य में दो भाग तथा आदि अन्त में कुछ कम चौड़ा हो।
 (77) तर्जनी 3 भाग लम्बी करें।
 (78) मध्यमा तर्जनी से एक भाग का सोलहवां भाग कम करें अर्थात् 33/16 भाग लम्बी हो।

- (79) मध्यमा से अनामिका कुछ और कम एक भाग का आठवां भाग छोटी अर्थात् 17/18 भाग लम्बी हो।
 (80) अनामिका से कनिष्ठा को कुछ और कम अर्थात् 11/4 भाग लम्बी हो।
 (81) चारों ही अंगुलियाँ 1-1 भाग प्रमाण मोटी और तिगुनी परिधि की हो।
 (82) अंगुष्ठ में 2 पर्व और अंगुलियों में 3-3 पर्व करें।
 (83) अंगुष्ठ का नख 1 भाग तर्जनी का नख आधा भाग और शेष का अनुक्रम से कम करें।
 (84) पाद तली को एड़ी के पास 4-4 भाग मध्य में 5-5 भाग और अन्त में 6-6 भाग प्रमाण चौड़ी बनावें।
 (85) चरण युगल एक समान पुष्ट बनावें।
 (86) शंख, चक्र, अंकुश, कमल, यव, छत्र आदि शुभ चिन्हों से संयुक्त चरण बनावें।
 (87) चरण युगल एक समान पुष्ट बनावें।
 (88) ललाट चार भाग।
 (89) मुख चार भाग।
 (90) नासिका चार भाग।
 (91) ग्रीवा चार भाग।
 (92) ग्रीवा से हृदय 12 भाग।
 (93) हृदय से नाभि 12 भाग।
 (94) नाभि से गुहा स्थान (लिंग) 12 भाग।
 (95) गुह स्थान से घुटने के ऊपर 24 भाग।
 (96) घुटना चार भाग।
 (97) घुटने से नीचे गाँठ तक 24 भाग।
 (98) गाँठ से पैर के तले तक चार भाग।
 (99) दोनों पैरों के बीच का अंतर चार भाग।
 (100) दोनों हाथों की अंगुलियों से पेढ़ में 4 अंगुल का अंतर होना चाहिए।
 (101) कुहनी के पास उदर से 2 भाग अंतर होना चाहिए।

- (102) नाभि से लिंग अष्टभाग नीचे बनाना चाहिए।
 (103) दोनों पाँवों के नीचे आसन के ऊपर अभिषेक के जल का निकास बनाना चाहिए।
 (104) बैठी हुई प्रतिमा की दाहिनी जांघ एवं पिंडी के ऊपर बाँया हाथ और बाँया चरण रखना चाहिए।
 (105) बाँयी जांघ और पिंडी के ऊपर दाहिना चरण और दाहिना हाथ रखना चाहिए।
 (106) दाँये घुटने से बाँये घुटने तक का नाप नीचे से मस्तक तक (पाद पीठ से केशान्त तक) समान होना चाहिए।
 (107) बाँये घुटने से दाँये कंधे तक और दाँये घुटने से बाँये कंधे तक समान होना चाहिए।
 (108) हाथ एवं पाँव पर शुभचिन्ह (शंख, चक्र, अंकुश, कमल, ध्वज, छत्र आदि) अंकित करें।

कायोत्सर्ग प्रतिमा का भाग

कायोत्सर्ग प्रतिमा - इसके दो भेद हैं नवताल और दसताल

नवताल - 108 भाग दसताल 120 भाग

अंग	नवताल	दसताल	अंग	नवताल	दसताल
ललाट	4 अंगुल	4	नासिका	4 अंगुल	5
मुख	4 अंगुल	4.5	ग्रीवा	4 अंगुल	4
ग्रीवा से हृदय तक	12 अंगुल	13.5	हृदय से नाभि तक	12 अंगुल	13.5
नाभि से गुह्य स्थान (लिंग)	12 अंगुल	13.5	गुह्य स्थान से घुटने के ऊपर	24 अंगुल	27
घुटना	4 अंगुल	4	घुटना के नीचे से गांठ तक	24 अंगुल	27
गांठ से पैर के तले तक	4 अंगुल	4			
	40	43.5		68	76.5

पदमासन प्रतिमा

अंग	नाप	अंग	नाप
ललाट	4 अंगुल	ग्रीवा से हृदय तक	12 अंगुल
नासिका	4 अंगुल	हृदय से नाभि तक	12 अंगुल
मुख	4 अंगुल	नाभि से गुह्य स्थान	12 अंगुल
ग्रीवा	4 अंगुल	घुटना	4 अंगुल
	16		40 = 56 अंगुल

- पदमासन प्रतिमा 56 भाग (अंगुल) होना चाहिए।
 - बैठी हुई प्रतिमा की दाहिनी जांघ एवं पिंडी के ऊपर बाँया हाथ और बाँया चरण रखना और बाँयी जांघ और पिंडी के ऊपर दाहिना चरण और दाहिना हाथ रखना चाहिए। इस आसन को पदमासन कहते हैं।
 - पदमासन प्रतिमा का माप ललाट से गुह्य स्थान तक 52 अंगुल कायोत्सर्ग प्रतिमा के अनुसार ही होता है एवं घुटना 4 अंगुल कुल 56 अंगुल भी माना गया है।
 - दाँये घुटने से बायें कंधे तक, बाये घुटने से दायें कंधे तक पाद पीठ आसन से केशान्त तक एवं दायें घुटने से बायाँ घुटना तक चारों भाग समान हो इसको सम चतुष्क संस्थान कहते हैं।
- प्रतिमा मान -**
- प्रासाद के द्वार की ऊँचाई के 8 अथवा 9 भाग करें। उनमें से ऊपर का एक भाग छोड़ दें, शेष बचे 7 या 8 भाग के 3 भाग करें। उनमें दो भाग की सूर्ति एवं 1 भाग प्रमाण ऊँची बेदी बनाना चाहिए।
 - द्वार की ऊँचाई के 5 या 6 भाग करें। 1 भाग छोड़कर शेष के 3 भाग करें। उसमें 2 भाग खड़गासन प्रतिमा और एक 1 भाग प्रमाण ऊँची बेदी (पवासन) करें।
 - द्वार की ऊँचाई के 32 भाग करें। उसमें से 16, 15 या 14 भाग प्रमाण की खड़गासन प्रतिमा और 14, 13 या 12 भाग की पदमासन प्रतिमा स्थापित करें।

वास्तु विज्ञान

4. समचौरस गर्भ गृह का जितना विस्तार हो उसके 3 भाग प्रमाण मूर्ति स्थापित करनी चाहिए। यह उत्तम मान है। इस मान में से 10 वाँ भाग कम करें तो मध्यम मान और उत्कृष्ट मान में से 5 वाँ भाग कम करने से कनिष्ठ मान की प्रतिमा स्थापित करना चाहिए।
5. चतुर्मुख मंदिर में चतुर्मुख प्रतिमा विराजमान करना हो तो मध्यम मान की प्रतिमा द्वारा विस्तार के बराबर रखना इसमें 8 वें भाग की हानि करना कनिष्ठ मान और विस्तार से 8 वाँ भाग अधिक रखना ज्येष्ठमान है।
6. एक गज विस्तार वाले प्रासाद में 11 अंगुल की खड़ी मूर्ति स्थापित करना। इसी प्रकार 4 गज तक के प्रासाद के प्रत्येक गज पर 10-10 इंच की वृद्धि करना। 5 से 10 गज तक के प्रासाद में प्रत्येक गज पर 2-2 इंच की वृद्धि करना। 11 से 50 गज पर्यन्त तक के प्रासाद में प्रत्येक गज पर 1-1 इंच की वृद्धि करना। यह मान उत्कृष्ट प्रतिमा का है। उत्कृष्ट मान से 20 वाँ भाग कम करने पर मध्यम मान और 10 वाँ भाग हीन करने पर कनिष्ठ मान होता है।
7. एक गज से 4 गज पर्यन्त पीठ वाले प्रासाद में प्रति गज 6 इंच के मान से पदासन प्रतिमा स्थापित करना। 5 गज से 10 गज के पीठ वाले प्रासाद में प्रति गज 3 इंच की वृद्धि करना तथा 11 से 50 गज पर्यन्त पीठ वाले प्रासाद में 1-1 इंच की वृद्धि करना। यह मान उत्कृष्ट प्रतिमा का है। इस मान से 20 वाँ भाग अधिक करने पर उत्कृष्ट मान और 20 वाँ भाग कम करने पर कनिष्ठ मान होता है।

प्रतिमा शुभाशुभ -

1. प्रतिमा सम अंगुल की नहीं बनवाना चाहिये विषम अंगुल की प्रतिमा श्रेष्ठ होती है।
2. चौबीसी जिनालय में बीच के मुख्य मंदिर के सामने दाहिनी ओर बांयी तरफ इन तीनों दिशाओं में आठ-आठ वेदियां मंदिर के भीतर निर्मित करना चाहिये। प्रमुख द्वार की दक्षिण दिशा से क्रमशः ऋषभदेव आदि जिनेश्वरों के पूर्व दक्षिण, पश्चिम उत्तर इस क्रम में स्थापना करना चाहिये।

वास्तु विज्ञान

3. जो प्रतिमा एक सी वर्ष से पहले स्थापित की हो वह यदि बेडोल हो अथवा खण्डित हो तो भी वह प्रतिमा पूजना चाहिये पूजा फल निष्कल नहीं जाता।
4. जिस प्रतिमा के अंग, उपांग खण्डित हो गये हो, उसका विधिपूर्वक विसर्जन कर दूसरी प्रतिमा स्थापित करना चाहिए। क्योंकि जली, कटी, तड़की और खण्डित प्रतिमा पर मंत्र संस्कार नहीं रहते। इस कारण उनमें देवपना भी नहीं रहता है।
5. मस्तक आदि से खण्डित प्रतिमा मंदिर में नहीं रखना चाहिए। विधिपूर्वक लाल वस्त्र से वेष्टित कर गहरे नद, नदी एवं जलाशय आदि में विसर्जित कर देना चाहिए।
6. मुख, नाक, नयन, नाभि और कमर इन अंशों में से कोई अंग खण्डित हो जाये तो मूल नायक रूप में स्थापित प्रतिमा का त्याग कर देना चाहिये। किन्तु परिकर चिन्ह भंग हो तो पूजा कर सकते हैं दोष नहीं है।
7. प्रतिष्ठा के बाद प्रतिमा का संस्कार करना पड़े, तौलना पड़े, दुष्ट मनुष्य का स्पर्श हो जाय, परीक्षा करना पड़े अथवा चोर चोरी कर ले जाय तो फिर उस प्रतिमा की पूर्ववत् प्रतिष्ठा करना चाहिये।
8. प्रतिमा पर यदि नंदावर्त श्रीवत्स, अश्व, शंख, स्वस्तिक, गज, गाय, बैल, इन्द्र, चंद्र, सूर्य, छत्र, माला, ध्वजा, तोरण, कमल, मृग और वज्र आदि के समान शुभरेखायें हो तो शुभ है।
9. हृदय, मस्तक, कपाल दोनों स्कन्ध दोनों कान मुख पेट पृष्ठ भाग दोनों हाथ दोनों पांव इत्यादि प्रतिमा के किसी अंग अथवा सब अंगों पर नीली या अन्य रंग वाली रेखायें हो तो उस प्रतिमा को छोड़ देना चाहिए।
10. उक्त अंगों को छोड़कर दूसरे अंगों पर रेखायें हो तो मध्यम है।
11. चीरा आदि दूषणों से रहित स्वच्छ चिकनी ठंडी अपने वर्ण सदृश रेखा दोष वाली नहीं है, दोष जानने के लिए बेल वृक्ष की छाल कांडी में पीसकर मूर्तियां पाषाण पर लेप करने से दाग, रेखायें दिखने लगते हैं।
12. मृत्तिका, काष्ठ और चित्राम आदि का जिन बिन्दु पूज्य नहीं कहा है।

वास्तु विज्ञान

13. जिन प्रतिमा, सुन्दर अंगोपांग, कान्ति लावण्य सहित, बृद्ध बालावस्था रहित प्रसन्न सौम्य शान्त स्वरूप, श्री वत्सं लक्षण सहित, नख केश सहित समचुरस्य संस्थान युक्त वैराग्य और तप की मुद्रा सहित पचासन एवं कायोत्सर्ग मुद्रा सहित अन्य नाना प्रकार के आसनों से रहित अष्ट प्रतिहार्य युक्त नासाग्र स्थित अविकारी दृष्टि शुभ लक्षण सहित एवं रौद्रादि बाहर दोषों से रहित दाग एवं प्रतिकूल रेखाओं रहित होना चाहिए।
14. प्रतिमा के 12 दोष - 1. रौद्र 2. कृशांग 3. चपटी नासिका 4. विरुपक नेत्र 5. हीनमुख 6. संक्षिप्तांग 7. बड़ा उदर 8. महा हृदय 9. महाअंदा 10. महाकटि 11. महापाद 12. हीनजंघा (शुष्क जंघा)। इन 12 दोषों से रहित विष्म पूजने योग्य है।
15. जिनके अंग उपांग खंडित हो, जो खिर रही हो, अथवा जीर्ण हो जिसकी प्रतिष्ठा पहले हो चुकी हो, जिसके उपांग खंडित हो जाने पर पुनः गढ़कर बनाई गई हो और जिस प्रतिमा के प्रति कोई संदेह हो वह प्रतिमा प्रतिष्ठा करने योग्य नहीं है।
16. अरिहंत विष्म अष्ट प्रतिहार्य एवं चिन्ह सहित होता है और सिद्ध विष्म अष्ट प्रतिहार्य एवं चिन्ह से रहित होता है।
17. मस्तक से खण्डित प्रतिमा गहरे पानी में विसर्जन करें।
18. जिन प्रतिमा के मुख की आकृति नाक आंख मुख आदि धिस गये हो उन प्रतिमाओं को शांति कर्म करके गहरे जल या संग्रहालय में स्थापित कर देना चाहिए।
19. ग्यारह अंगुल से नव हाथ ऊँची प्रतिमा मंदिर में पूज्य है और दस हाथ से अधिक प्रमाण वाली प्रतिमा मंदिर के बिना भी पूज्यनीय है।
20. अभिषेक, प्रक्षाल, पूजन, विमानोत्सव आदि में प्रतिमा नीचे गिर पड़े (खंडित न हुई हो) तो उस प्रतिमा का 108 कलशों से अभिषेक, शांतिधारा, पूजन करके णामोकार मंत्र का 108 बार जाप कर 108 आहूति देकर दृवन करें। पश्चात् प्रतिमा स्थापित कर प्रायश्चित अवश्य लेवें।

वास्तु विज्ञान

105

21. अभिषेक, प्रक्षाल, पूजन, विमानोत्सव के समय प्रतिमा गिरने से अंग, उपांग, प्रत्यांग खंडित हो जाएं तो उन्हीं भगवान की अन्य प्रतिमा का 1008 कलशों से अभिषेक, शांतिधारा, पूजन, शांतिविधान, शांति मंत्र आराधन एवं शांति हवन करना चाहिए तथा खंडित प्रतिमा को विधिपूर्वक अगाध जल राशि में विसर्जित कर गुरु से प्रायश्चित लें और शुभ मुहूर्त में उन्हीं तीर्थकर की नवीन प्रतिमा प्रतिष्ठित करके स्थापित करना चाहिए अन्य तीर्थकर की प्रतिमा नहीं।
22. मंजन हेतु वेदी से मूलनायक को नहीं उठाना चाहिए वर्ती पर मंजन करें।
23. मंजन हेतु अशुद्ध पदार्थों/साधनों का उपयोग नहीं करना चाहिए। रीढ़ा के जल एवं पिसी लवंग के लेप से प्रतिमा का मंजन करें। धातु की प्रतिमा पर नीबू, इमली आदि खड्डे पदार्थों से प्रतिमा पर दाग आने की सम्भावना रहती है।
24. यदि एक समय प्रतिमा की पूजा न हो तो दूसरे समय दुगुड़ी पूजन कर महामंत्र का 108 बार जाप करना चाहिए।
25. विमानोत्सव, रथोत्सव एवं गजरथ आदि में धातु की प्रतिमा ही विराजमान करना चाहिए।
26. एक सिंहासन पर एक ही प्रतिमा स्थापित करना चाहिए।
27. धातु एवं रत्नादि की प्रतिमा का जीर्णोद्धार किसी भी स्थिति में नहीं करने के आदेश हैं।
28. पाषाण की प्रतिमा में दो भेद कर उनका लेप जीर्णोद्धार कहा गया है। ऐसे पाषाण की प्रतिमा जो पृथ्वी से प्राणरूप जुड़ी हुई न हो। किसी प्रस्तर का खंड कर उसमें प्रतिमा का आकार दिया गया हो। चाहे ऐसी प्रतिमा दीर्घ क्यों न हो। अचित्त प्रतिमा कही गई है। ऐसी प्रतिमाओं का जीर्णोद्धार एवं लेप करना आगम सम्मत नहीं है। यदि ऐसा करते हैं तो पूज्यता योग्य गुणों में संशय है।
29. ऐसी प्रतिमा जो लघु या दीर्घकाय हो किसी पृथ्वी/पहाड़ से प्राणरूप से जुड़ी हुई हो तो ऐसी प्रतिमा सचित्त प्रतिमा कहलाती है। यदि ऐसी

वास्तु विज्ञान

- प्रतिमा जीर्ण हुई है तो लेप व जीर्णोद्धार के योग्य कही गई है। जीर्णोद्धार के उपरांत पंचकल्याणक गुणानुरोध के लिए कहा गया है।
- सचित्र प्रतिमाओं के अतिरिक्त कोई प्रतिमा अंग, उपांग से खंडित हो या कैसी भी स्थिति में जीर्णोद्धार योग्य हो तो उसका जीर्णोद्धार नहीं कहा है। ऐसे स्थिति में प्राचीन एवं अतिशययुक्त प्रतिमायें यदि अंगोपांग से खंडित भी हैं तो भी उपादेयता ग्रहण की गई है।
30. धातु (सोना, चाँदी, पीतल आदि) और लेप (चूना, ईंट, मिठी आदि) की प्रतिमा यदि अंगहीन हो जाय तो उसी की दूसरी बार बना सकते हैं। किंतु काष्ठ, रस्न और पत्थर की प्रतिमा यदि खंडित हो जाय तो उसी को कभी दूसरी बार नहीं बनाना चाहिए।
31. प्रतिष्ठा होने के बाद कोई भी प्रतिमा का कभी संस्कार नहीं होता। यदि करना पड़े तो पूर्वत् प्रतिष्ठा करना चाहिए।
32. स्वयं बनी हुई और रस्तों की बनी हुई मूर्तियाँ यदि मान में न्यूनाधिक हो तो दोष नहीं हैं। परंतु जो मूर्तियाँ शिल्पियों द्वारा बनाई जाती हैं वे मानानुसार ही होना चाहिए। मान में न्यूनाधिक बनी प्रतिमा अनिष्टकारी ही होती है।
33. यदि प्रतिमा चोरी गई हो और प्राप्त हो जाय तो उसे पुनः प्रतिष्ठित करें या लघु पंचकल्याणक कर स्थापित करें।
34. प्लास्टिक, एक्रिलिक, नायलोन एवं प्लास्टर ऑफ़ पेरिस की प्रतिमा अपूज्य एवं अनिष्टकारक होती है। ये प्रतिमायें ठोस भी हो तो भी अपूज्य हैं।
35. धातु की प्रतिमाएँ ठोस होना चाहिए। पोली प्रतिमा अपूज्य होती है चाँदी सोना आदि की भी प्रतिमा पोली नहीं होना चाहिए पोली प्रतिमा की प्रतिष्ठा अनिष्टकारी होती है।
36. एक ही पटिया (पत्थर) पर चौबीसी जिन विम्ब पंचबालयति विम्ब, शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ विम्ब एवं सप्तर्षि विम्ब भी बनाये जा सकते हैं।

वास्तु विज्ञान

107

सदोष प्रतिमा का फल -

1. दायीं बायीं और तिरछी दृष्टि से धननाश, और विरोध और भय, शिल्पी और आचार्य का नाश।
2. नीची दृष्टि से पुत्रनाश, भय, द्रव्यनाश और पूजा करने वालों की हानि।
3. ऊर्ध्व दृष्टि से राज्य, राजा, स्त्री और पुत्रनाश।
4. स्तब्ध दृष्टि से शोक, उद्घेग, सन्ताप तथा धनक्षय।
5. रीढ़ लक्षण से निर्माणकर्ता का नाश।
6. दुबले शरीर से धनक्षय।
7. छोटे कद से यजमान का नाश।
8. नेत्रहीन होने से नेत्रज्योति का क्षय।
9. छोटे मुखबाली से शोभा एवं कान्ति नाश।
10. दीर्घ उदर से रोगोत्पत्ति।
11. कृश उदर से दुर्भिक्ष।
12. कृश हृदय से महोदर एवं हृदयरोग आदि।
13. कन्धा नीचे होने से भ्रातृ मरण।
14. नाभि लम्बी होने से कुलक्षय।
15. काँख लम्बी होने से इष्टवियोग।
16. कमर प्रतली होने से कर्ता का धात।
17. शरीर के नीचे का भाग पतला होने से शिल्पियों के सुख का विनाश।
18. नासिका, मुख और पैर देढ़े हों या हाथ, भाल, नख और मुख आदि प्रमाण से पतले हों तो कुल का नाश।
19. प्रमाण से अधिक मोटी या लम्बी हो तो सम्प्रसिनाश।
20. रोती या हँसती हुई सी हो या गर्व से भरे अंगबाली हो तो कर्ता की हानि।
21. हृदय, मस्तक, कपाल, दोनों कन्धे, दोनों कान, मुख, पेट, पृष्ठभाग, दोनों पैर और दोनों हाथ, इस प्रकार सर्वांग में यदि काली, नीली या आसमानी रंग की रेखाएँ हों तो वह प्रतिमा सर्वथा वर्जनीय है।

22. आसन विषम हो तो व्यापिकारक।
23. प्रतिमा ना नख भंग हो तो शत्रुभय।
24. प्रतिमा की अंगुली भंग हो गई हो तो देशविनाश।
25. प्रतिमा की नासिका भंग हो गई हो तो कुलनाश।
26. प्रतिमा के पैर भंग हो गये हों तो द्रव्यक्षय।
27. प्रतिमा का पादपीठ भंग हो गया हो तो स्वजननाश।
28. प्रतिमा का चिह्न भंग हो गया हो तो वाहन नाश।
29. प्रतिमा का पारकर भंग हो गया तो सेवकों का नाश।
30. प्रतिमा का छत्र भंग हो गया हो तो लक्ष्मीविनाश।
31. प्रतिमा का श्रीबत्सु भंग हो गया हो तो सुखविनाश।
32. प्रतिमा का आसन भंग हो गया हो तो ऋद्धिनाश।
33. प्रतिमा का कान भंग हो तो बंधुनाश।
34. प्रतिमा का बाहु भंग हो तो बंधनकारक है।

यंत्र -

1. स्वर्ण, रजत, ताम्र एवं पीतल के पत्र पर विधि-विधान पूर्वक बीजाक्षणों, मंत्रों एवं अंकों का लेखन जिसे आगमानुसार मंत्रों द्वारा प्रतिष्ठित किया जाता है वह यंत्र कहलाता है।
2. मूर्ति के ढीक सामने यंत्र न रखें।
3. यंत्र इस प्रकार रखें कि मूर्ति का चिन्ह न ढके।
4. यंत्र का प्रयोग भामण्डल के स्थान पर न करें।
5. यंत्र विधि पूर्वक प्रतिष्ठित होना चाहिये। मात्र हवन कुंड में रखने से यंत्र शुद्ध नहीं होता।
6. यंत्र विषम संख्या में ही रखें।
7. प्रतिमा की तरह यंत्र का अभिषेक प्रक्षाल प्रतिदिन करें।
8. यंत्र को सिंहासन पर छत्र लगाकर स्थापित करें।
9. यंत्र किसी आचार्य या गुरु के निर्देशन में ही प्राप्त कर स्थापित करें।

10. यंत्र जिन विम्ब के समान ही पवित्र एवं पूज्यनीय है।
11. यंत्र ऋद्धि-सिद्धि वाले, विघ्न विनाशक, कष्ट निवारक, सर्वसिद्धिप्रदायक होते हैं।
12. जिन विशेष यंत्रों का उपयोग गले में, हाथ में एवं अन्य स्थानों में किया जाता है उन्हें भोजन पत्र पर केशर से लिखना चाहिये।

चरण चिन्ह -

1. चरण चिन्ह का आकार तलवे का होता है जिसमें रेखायें बनी होती हैं। नाखून नहीं होते।
2. जिस स्थल से तीर्थकर/मुनि मोक्ष जाते हैं वहाँ चरण चिन्ह बनाये जाते हैं।
3. चरण चिन्ह में पांव की अंगुलियाँ उत्तर या पूर्व में होना चाहिए।

पूजा करने वाले की दिशा -

1. यदि प्रतिमा पूर्वाभिमुख विराजमान हो तो पूजक को उत्तर मुख होकर पूजन करना चाहिये और यदि प्रतिमा उत्तराभिमुख विराजमान हो तो पूजक को पूर्वमुख होकर पूजा करना चाहिए।
2. भगवान के विलुल सामने से दर्शन पूजन नहीं करना चाहिये।
3. अन्य दिशा में मुख करने से पूजा फल नहीं मिलता एवं पूजा में पूजक का मन नहीं लगता।

शिखर -

1. शिखर की ऊँचाई प्रसाद (मंदिर) के मान से पोने दो गुणा डेढ़ गुणा या सवा गुणा रखनी चाहिये। किन्हीं शिल्पज्ञों के मत से दूनी एवं ढाई गुणी ऊँचाई वाले शिखर भी बनाये जाते हैं।
2. शिखर विषम संख्या में बनावें।
3. हीनाधिक मान की शिखर अशुभ होती है।
4. शिखर अंदर से पोली होनी चाहिए।
5. शिखर की चौड़ाई से ऊँचाई सर्वांग होना चाहिए।
6. शिखर के नीचे के दोनों कोने के दस भाग करें। इसके छः भाग के बराबर शिखर स्कंध की चौड़ाई रखें। छः भाग से न अधिक न कम।

7. सुरशिला से कलश के अंत भाग की ऊँचाई के बीस भाग करें। उनमें 8, 8½ अथवा 9 भाग मंदिर की दीवार की ऊँचाई रखें शेष ऊँचाई का शिखर बनावे।
8. शिखर अंतिम मंजिल की बेदी पर ही बनाना चाहिए।

कलश -

1. कलश का माप गर्भालय के विस्तार का आठवें भाग करना चाहिये। यह कनिष्ठ मान है। इसी मान में कनिष्ठ मान का 16 वां भाग जोड़ देने से ज्येष्ठ मान होता है और कनिष्ठ मान का 32 वां भाग कनिष्ठ मान में जोड़ देने से मध्यम मान होता है।
2. कलश की ऊँचाई विस्तार माप से डेढ़ गुनी होना चाहिए।
3. पत्थर लकड़ी अथवा ईंट जिसका प्रासाद, मंदिर बना हो उसी का कलश बनाना चाहिये। परन्तु प्रतिष्ठा होने के बाद सोने का अथवा रत्न जड़ित भी कर सकते हैं।
4. कलश में विषम गुण्डी होना चाहिये।
5. कलश का गला और पीठ का उदय दो भाग, कलश के मध्यम भाग का मान तीन भाग, कर्णिका का उदय एक भाग और बिजौरा का उदय तीन भाग। कुल नवभाग कलश के उदय के हैं।

ध्वजा एवं ध्वज दण्ड -

1. ध्वज दण्ड पोला नहीं होना चाहिए।
2. मजबूत काट का गोल और सुन्दर होना चाहिए।
3. दण्ड में पर्व विभाग विषम संख्या में और ग्रन्थी (चूड़ी) सम संख्या में होना चाहिये।
4. ध्वज दण्ड बांस शीशाम, खेर, अर्जुन एवं महुआ आदि का ढढ़ छिद्र एवं गांठ आदि के दोयों से रहित होना चाहिए।
5. लोहे का ध्वज दण्ड सर्वथा वर्जनीय है।
6. यदि धातु का बनवाना पड़े तो पीतल ताँबा का बनवाना चाहिये और उसमें निर्दोष एवं उत्तम जाति का काष्ठ भर देना चाहिये।

7. पूर्वाभिमुख प्रासाद के नैऋत्य कोण में दक्षिणाभिमुख प्रासाद के वायव्य कोण में पक्षियाभिमुख प्रासाद के ईशान कोण में और उत्तराभिमुख प्रासाद के आनेय कोण में ध्वज दण्ड स्थापित करना चाहिये। (ईशान की प्रगुणता है)
8. चतुर्मुख मंदिर (समवशारण) के ईशान कोण में ध्वज दण्ड स्थापित करना चाहिए।
9. गर्भगृह के विस्तार मान बराबर ध्वज दण्ड की लम्बाई रखें। यह ज्येष्ठ मान है। इसमें से दशवां भाग कम करने पर मध्यम मान और पाँचवां भाग कम करने पर कनिष्ठ मान होता है।
10. शिखर के पायचंच के बराबर ध्वज दण्ड बनाना कनिष्ठ मान है इसमें बारहवां भाग बढ़ा देने में मध्यम मान और छठा भाग बढ़ा देने से ज्येष्ठ मान होता है।
11. गर्भगृह अथवा शिखर के पायचंच के विस्तार मान का लम्बा ध्वज दण्ड बनाना ज्येष्ठ मान है इसमें से बारहवां भाग कम करना मध्यम मान और छठा भाग कम करने पर कनिष्ठ मान होता है।
12. प्रासाद की खर शिला से लेकर कलश के अग्रभाग पर्यन्त के उदय के तीन भाग करके इनमें से एक भाग के मान का लम्बा ध्वज दण्ड बनाना ज्येष्ठ मान है। आठवें भाग कम करना मध्यम भाग और चतुर्थ भाग कम करना कनिष्ठ मान है।
13. बिना परिक्रमा वाले मंदिर का ध्वज दण्ड प्रासाद विस्तार के मान बराबर और परिक्रमा वाले मंदिर का ध्वज दण्ड (परिक्रमा और परिक्रमा की दीवाल छोड़कर) मध्य प्रासाद अर्थात् गर्भगृह और गर्भगृह की जिती दोनों दीवालें हैं। उतने माप का ध्वज दण्ड बनावें।
14. जिस दिन ध्वजा चढ़े प्रति वर्ष उत्ती दिन ध्वजा चदाना चाहिये।
15. यदि ध्वजा गिर गई हो, उलझ गई हो, बन्दरों द्वारा फाड़ दी गई हो, वर्ष से खराब हो गई हो अथवा असमय में जीर्ण हो गई हो तो तत्काल नवीन ध्वजा चढ़ा देना चाहिये।

16. बिना ध्वजा के मंदिर एक दिन भी सूता नहीं रहने देना चाहिये। क्योंकि शिखर पर ध्वज न होने से उसमें किये गये जप, पूजन, ध्यान, अध्ययन आदि अनुष्ठान निष्फल होते हैं।
17. शिखर पर यदि ध्वजा न हो तो उस मंदिर में असुरों का निवास हो जाता है।
18. ध्वजा की लम्बाई दण्ड के बराबर होना चाहिये।
19. ध्वजा बिकोण और लम्बी दो प्रकार की होती है। शिल्प शास्त्रों में देवालय पर लम्बी ध्वजाओं का वर्णन मिलता है।
20. देवालय में शिखर के कलश से एक हाथ ऊँची ध्वजा आरोग्य, देती है दो हाथ ऊँची ध्वजा पुत्र सम्पत्ति को, तीन हाथ ऊँची धान्यादि को चार हाथ ऊँची राजा की वृद्धि को और पाँच हाथ ऊँची ध्वजा राज्य वृद्धि के साथ - साथ सुभिक्ष भी करती है।
21. बस्त्र से बनी ध्वजा लक्ष्मी, यश और सुख प्रदान करती है।
22. देवालय पर धातु की ध्वजा नहीं लगाना चाहिये।
23. ध्वजा की लम्बाई ध्वज दण्ड के बराबर और ध्वजा की चौड़ाई लम्बाई के आठवें भाग प्रमाण होना चाहिए। ध्वजा पाँच वर्ष के वस्त्रों से बनानी चाहिये और अग्र भाग में तीन अथवा पाँच शिखायें बनाना चाहिये।
24. ध्वजा की लम्बाई ध्वज दण्ड के बराबर एवं चौड़ाई पाटली के बराबर होती है।
25. ध्वजा, चार हाथ लम्बी और एक हाथ चौड़ी होना चाहिए। नीचे से प्रारंभ कर क्रमशः काला, पीला, सफेद, लाल नीला सुन्दर ध्वजा बनाना चाहिए। अग्रभाग में तीन या पाँच शिखायें बनावें।
26. ध्वजा के मध्य ऊँचाई स्वास्तिक, नंद्यावर्त तथा जिनविम्ब बनावें। ये यदि एक ओर बनाई जावे तो मंदिर का और ध्वज दण्ड का मुख जिस ओर हो उसी ओर ये आकृतियां करना चाहिए।
27. ध्वजाधार - शिखर की ऊँचाई के छह भाग करें ऊपर के छठवें भाग के पुनः चार भाग करें इनमें से नीचे का एक भाग छोड़कर दाहिने प्रतिरथ में ध्वजाधार बनावें अर्थात् ऊँचाई के चौबीस भाग करके बाइसवें भाग में ध्वजाधारण बनावें।

28. ध्वजाधार की मजबूती के लिये स्तम्भिका रखी जाती है उसकी ऊँचाई ध्वजाधार से अमलसार तक रखे। इसके ऊपर कलश रखे स्तम्भिका और ध्वज दण्ड को अच्छी तरह बांधे।
 29. एक हाथ के विस्तार वाले ध्वज दण्ड की मोटाई पौन अंगुल रखना चाहिये। पश्चात् दो से पचास हाथ पर्यन्त के विस्तार वाले प्रासादों के ध्वज दण्डों का विस्तार प्रतिहाथ अर्थ-अर्थ अंगुल बढ़ा कर रखना चाहिये।
 30. ध्वज दण्ड की पाटली का मुख यदि ईशान दिशा में स्वता जाय तो उस स्थान की वृद्धि होती है प्रजा सुखी रहती है।
 31. ध्वज दण्ड के उदयमान के छठे भाग प्रमाण की मर्कटी (पाटली) होती है। चौड़ाई लम्बाई के अर्ध भाग प्रमाण और मोटाई चौड़ाई के तीसरे भाग प्रमाण होती है।
 32. पाटली का आकार अर्ध चन्द्राकार होना चाहिये। अर्ध चन्द्राकृति के दोनों ओर फूल पत्ती वाली आकृति बनाना चाहिये। दोनों ओर लम्बी - लम्बी धंटियों लटकाना चाहिये और दण्ड के ऊपर सुन्दर कलश बनावें।
 33. अर्धचन्द्र के आकार वाला भाग पाटली का मुख होता है।
 34. पाटली का मुख मंदिर के मुख की दिशा में रखना चाहिये।
 35. पाटली के पिछले भाग में ध्वजा लगाना चाहिये।
 36. ध्वजा पिरोने के लिये पाटली के पिछले भाग में तांबे की एक सलाई डालना चाहिये। गाँठ लगाकर बाँधी गई ध्वजा समस्त समाज को अनिष्ट फल देती है।
- गृह चैत्यालय -**
1. गृह चैत्यालय निवास स्थान से अलग पूर्व, उत्तर, या ईशान दिशा में बनाना चाहिए।
 2. गृह चैत्यालय सम चौरस होना चाहिये।
 3. परिक्रमा छोड़कर नियमानुसार बेदी बनाकर बिम्ब स्थापित करें।
 4. गृह चैत्यालय में बाल ब्रह्मचारी तीर्थकर के बिम्ब स्थापित न करें।
 5. गृह चैत्यालय में स्थिर या अचल प्रतिमा स्थापित न करें।

6. चैत्यालय के निर्माण में लोहे का प्रयोग न करें।
7. गृह चैत्यालय में शिखर पर ध्वज दण्ड नहीं रखना चाहिये सिर्फ अमल सार कलश ही रखना चाहिए।
8. जिस तीर्थकर की मूर्ति मंदिर में रखना हो उनकी तथा गृह स्वामी की राशि गुण का मिलान करके ही मूर्ति स्थापित करें। द्विर्दादशा एवं षडाष्टक दोष अवश्य निकालना चाहिये।
9. गृह चैत्यालय में केबल पद्मासन प्रतिमा ही स्थापित करें।
10. गृह चैत्यालय में सिद्ध प्रतिमा नहीं रखना चाहिये।
11. गृह चैत्यालय में स्थापित प्रतिमा की पीठ मुख्य वास्तु/घर की तरफ नहीं होना चाहिये।
12. गृह चैत्यालय में स्थापित प्रतिमा का बांधे भाग की तरफ वास्तु/घर होना अशुभ है।
13. गृह चैत्यालय में एक अंगुल से लेकर ग्यारह अंगुल के मध्य विषम अंगुल की प्रतिमा स्थापित करना चाहिये।
14. गृह चैत्यालय में शास्त्र की अलमारी नैकृत्य, दक्षिण या पश्चिम में रखना चाहिये।
15. घड़ी पूर्व पश्चिम या उत्तर की दीवाल पर लगावें। कर्कश आवाज वाली अथवा तीव्र ध्वनि में संगीत प्रसारण करने वाली घड़ी न लगावें।
16. गृह चैत्यालय में एटीफोन न रखें।
17. गृह चैत्यालय के छत पर टी.बी. ऐन्टीना न लगावें।
18. गृह चैत्यालय में खंडित मूर्ति न रखें एवं जिनकी प्रतिष्ठा नहीं होती है, ऐसी कागज प्लास्टिक, काँच एवं पल्मूमीनियम आदि की मूर्ति न रखें।
19. सिद्ध क्षेत्र अतिशय क्षेत्र के अतिरिक्त स्वर्गस्थ एवं जीवित गृहस्थों के चित्र नहीं लगाना चाहिए।
20. भगवान या मुनिराज के फोटो सहित छपे हुये बीड़ी या साबुन आदि के विज्ञापन युक्त कलेन्डर आदि नहीं लगाना चाहिए।
21. गृह चैत्यालय की दीवाल पर बड़ा काँच नहीं लगाना चाहिए।

22. गृह चैत्यालय में गहरा भड़कीला रंग न करें।
 23. चैत्यालय में झाड़ कचरा की टोकनी आदि न रखें।
 24. गृह चैत्यालय में सौन्दर्य प्रसाधन, इत्र, बस्त्र भोजन संबंधी सामग्री अथवा गृहस्थी संबंधी हल्की भारी वस्तुएं एवं तिजोरी आदि न रखें।
 25. पूजा, जाप्य एवं स्वाध्याय आदि दक्षिण मुख करके न करें।
 26. गृह चैत्यालय में पूजन करते समय घर में टी.बी. या फिल्म संगीत आदि चालू न रखें।
 27. रात्रि के सोये हुये तथा शौचादि के वस्त्रों से एवं बिना स्नान किये चैत्यालय में प्रवेश न करें।
 28. मासिक धर्म वाली महिलायें/युवती किसी भी स्थिति में मंदिर में प्रवेश न करें। न ही इसके दरवाजे पर खड़े या बैठे रहें। पर्दाई प्रतिमा पर न पढ़ें।
 29. गृह चैत्यालय के ऊपर शौचालय, मूवालय, कचराघर अथवा जूते चप्पल रखने का स्थान नहीं होना चाहिये।
 30. चैत्यालय के ऊपर कोई बजन न रखें।
 31. सेप्टिक टैंक के ऊपर चैत्यालय न बनावें।
 32. सीढ़ियों के नीचे और ऊपर चैत्यालय न बनावें।
- वस्तिका/अतिथि भवन -**
1. जिन भवनों में साधक संत जन ठहरते हैं उन्हें वस्तिका, मुनि निवास त्यागी भवन कहते हैं।
 2. तीर्थ क्षेत्रों में मंदिर परिसर में ऐसे भवनों का निर्माण किया जाता है जिसमें साधु एवं धर्मात्मा जन ठहर सकें।
 3. शहर या ग्रामों में प्राचीन काल से ही नगर के बाहर मंदिर परिसर में ही उपवन एवं साधु धर्मात्माओं को ठहरने के लिए धर्मशाला शैली में भवन बनाये जाते हैं इन्हें नसियां कहते हैं।
 4. वस्तिका तिर्थच्च पशु पक्षियों के आगमन से मुक्त होना चाहिये।
 5. वस्तिका/अतिथि भवन साधु संतों की चर्चा, ध्यान अध्ययन एवं तपस्या के लिये अनुकूल होना चाहिये।

6. वस्तिका में प्रवेश और निर्गम सुखपूर्वक एवं बाधा रहित होना चाहिये। जिसमें मुनि आर्पिका, श्रावक श्राविका बाल बृद्ध सभी वहाँ आ जा सकें।
7. भूमि समतल एवं श्रेष्ठ होना चाहिये।
8. ग्राम के बाह्य भाग में वस्तिका का निर्माण होना चाहिए।
9. वस्तिका/अतिथि भवन, खुले स्थान में होना चाहिए।
10. जहाँ गन्धर्व नृत्य, गायन अथवा अश्व शाला हो एवं कलह प्रिय अश्विए जन रहते हों वहाँ वस्तिका/अतिथि भवन नहीं बनाना चाहिए।
11. मुनियों के ठहरने का स्थान यदि मंदिर परिसर में ही बनाना हो तो इसे मंदिर की उत्तर दक्षिण, आगे य अथवा पश्चिम में बनाना चाहिए।
12. वायव्य में धान्यगृह, आगेय में चौका लगाने के कमरे बनाना चाहिये।
13. वस्तिका के नैऋत्य भाग में भारी सामान कक्ष, पश्चिम में जल स्थान एवं आगे के भाग में शिक्षण के लिये पाठशाला तथा प्रवचन हाल बनावें।
14. वस्तिका के दक्षिण भाग में साधुओं के ठहरने का स्थान बनाना चाहिए।
15. दो या तीन मंजिल की वास्तु का निर्माण त्यागी भवन के लिये कर सकते हैं।
16. वस्तिका के कक्ष में बैठने या शयन करने के स्थान पर बीम आदि नहीं होना चाहिए।
17. वास्तु निर्माण के सभी नियम वस्तिका निर्माण के लिये पालन करना चाहिए।
18. वस्तिका में सादगी होना अत्यन्त आवश्यक है। भवन निर्माण की शीली मंदिर अथवा धर्मशालानुमा होना चाहिए। होटल अथवा आरामगाह नुमा नहीं होना चाहिए।
19. वस्तिका में लैलासिता, श्रुंगार अथवा कामुकता की झलक भी नहीं आना चाहिये अन्यथा वस्तिका निर्माण का उद्देश्य नष्ट हो जायेगा।
20. वस्तिका में केवल सफेद रंग करें। फीके रंग का प्रयोग भी कर सकते हैं। गाढ़े रंग का प्रयोग न करें।
20. वस्तिका में ऐसी सजावट चित्रकारी न करें जो ध्यान अध्ययन के विपरीत वातावरण निर्माण करती हो।

निषीधिका

1. मुनियों के समाधि स्थल को निषीधिका कहते हैं।
2. निषीधिका का स्थान नगर से अति दूर, और अति पास नहीं होना चाहिए।
3. निषीधिका स्थान एकान्त, प्रकाशायुक्त, विस्तीर्ण, परिवर्त होना चाहिए।
4. निषीधिका स्थान कठोरता रहित, विल आदिसे रहित, न बहुत ऊँचा, न बहुत नीचा रज रहित, जीव रहित और बाधा रहित होना चाहिए।
5. निषीधिका का स्थान, क्षपक की वस्तिका से, नैऋत्य दक्षिण और पश्चिम दिशा में होना चाहिए।
6. जहाँ क्षपक आराधनाओं की साधना करता है वह वस्तिका है एवं जहाँ क्षपक के शरीर की अंतिम क्रिया होती है उसे निषीधिका कहते हैं।

स्नान गृह -

1. स्नान गृह मन्दिर के पूर्व उत्तर अथवा इशान में बनाना चाहिए। वायव्य दिशा में भी स्नान गृह बनाया जा सकता है।
2. स्नान गृह के जल का बहाव उत्तर या इशान में होना चाहिए।
3. स्नान पूर्व दिशा की तरफ मुख करके करना चाहिए।
4. दक्ष धावन पश्चिम की ओर मुख करके करना चाहिए।
5. पूजन के बस्त्र धारण करते समय मुख पश्चिम या उत्तर में होना चाहिए।
6. कपड़ा बदलने का स्थान इशान पूर्व या उत्तर में होना चाहिए।

पूजन सामग्री तैयार करने का स्थान -

1. पूजन सामग्री तैयार करने का स्थान इशान दिशा में होना चाहिए।
2. पूर्व या उत्तर में भी पूजन सामग्री तैयार कर सकते हैं।

पैर धोने का स्थान -

1. पूर्व या उत्तराभिमुख मंदिर में पैर धोने का स्थान इशान में होना चाहिए।
2. मंदिर का प्रवेश द्वार पश्चिम में हो तो पैर धोने का स्थान वायव्य में करें।
3. दक्षिण दिशा में प्रवेश होता नहीं है कदाचित हो तो भी किसी भी स्थिति में आगेय दिशा में पैर धोने का स्थान नहीं बनाना चाहिए।

4. जरे, चप्पल, पानी के स्थान से अलग आनेय या वायव्य में उतारना चाहिए।

कचरा रखने का स्थान -

1. कचरा रखने का पात्र पूर्व, उत्तर एवं ईशान में नहीं रखना चाहिए।
2. कचरा मुख्य द्वार के समक्ष नहीं रखना चाहिए।
3. कचरा पात्र नैऋत्य, दक्षिण पश्चिम दिशा में रखना चाहिए।
4. कचरा पात्र दीवाल से सटाकर नहीं रखना चाहिए।
5. कोयला पथर आदि भी दीवाल से सटाकर नहीं रखना चाहिए।

माली कर्मचारी कक्ष -

1. माली/कर्मचारी कक्ष दक्षिण, पश्चिम में बनाना चाहिये।
2. इस कक्ष का द्वार उत्तर या पूर्व की ओर होना चाहिये।
3. यदि उत्तर या पूर्व में कर्मचारी कक्ष बनाना पड़े तो मुख्य दीवाल से हटकर बनावें।

कार्यालय/सूचना पट

1. कार्यालय का निर्माण मंदिर परिसर के पूर्व या उत्तर में करें।
2. अपरिहार्य स्थिति में पश्चिम में भी सूचना लगा सकते हैं।
3. कार्यालय का द्वार पूर्व या उत्तर में बनाना चाहिये।
4. कार्यकर्ता/ट्रस्टीगण कार्य करते समय अपना मुख उत्तर या पूर्व में रखें।
5. सूचना पटल कार्यालय की बाहरी दीवाल पर लगावें।
6. मंदिर के प्रवेश द्वार के समीप भी सूचना पटल लगा सकते हैं।
7. मंदिर की दीवाल पर पृथक कील ठोककर कोई भी सूचना अथवा आमंत्रण पत्रिका नहीं टांगना चाहिए।

शास्त्र भंडार

1. ताड पत्र पर लिखे प्राचीन हस्तलिखित शास्त्र पृथक अलमारी में भलीभांति सुरक्षित रखना चाहिए।
2. अस्त्यधिक उपयोग में आने वाले पूजा ग्रन्थ एवं गुटके पृथक सर्वोपयोगी स्थान पर रखना चाहिये।

3. सभी शास्त्र भंडार की अलमारियां दक्षिण नैऋत्य अथवा पश्चिमी भाग में रखें।
4. अलमारियों के दरवाजे उत्तर पूर्व में खुलना चाहिये।
5. सभी अलमारियां दीवाल से सटाकर रखना चाहिये।
6. अलमारियों का आकार आयताकार ही रखे अन्य विषम आकार न रखें।
7. अलमारियां टेढ़ी या झुकाकर न रखें।
8. दीवाल के अन्दर बनी अलमारियां एक सूत्र में बनावें।
9. दीवाल गत अलमारियों के ऊपर खंटी या कील न ठोकें।
10. ग्रन्थों को सीलन एवं दीमक से सुरक्षा करनी चाहिये।

मंदिर में रिक्त भूमि का महत्व -

1. परकोटे एवं मंदिर के बीच पर्याप्त जगह छोड़ना चाहिये।
2. खाली जगह उत्तर पूर्व में अधिक छोड़ना चाहिये एवं दक्षिण और पश्चिम में कम जगह छोड़ना चाहिये।
3. दक्षिण पश्चिम में रिक्त स्थान ज्यादा हो तो वहाँ काई निर्माण करा सकते हैं।
4. मंदिर में बीच का स्थान खाली रहना चाहिये।
5. मंदिर के बीच में खुला चौक बनाने की परम्परा है।

गुप्त भंडार -

1. गुप्त भंडार/तिजोरी कक्ष-उत्तर में बनाना चाहिये। किसी भी स्थिति में वायव्य में न बनायें।
2. यदि मंदिर पूर्वाभिमुख हो तो भंडार गृह/तिजोरी जिन प्रतिमा के दाहिने ओर रखना चाहिये तथा इस प्रकार रखें कि वह उत्तर की ओर खुले।
3. यदि मंदिर उत्तराभिमुख हो तो भंडार गृह/तिजोरी भगवान के बायीं ओर तथा उत्तर की ओर खुलने वाली होना चाहिये।
4. गुप्त भंडार कभी भी दीवाल के अन्दर न बनावें।
5. गुप्त भंडार पेटी कभी भी दीवाल से सटाकर न रखें।
6. गुप्त भंडार पेटी सीढ़ी अथवा बीम के ठीक नीचे न रखें।

वास्तु विज्ञान

7. मंदिर के सभी महत्वपूर्ण कागजात उत्तर की ओर खुलने वाली आलमारी में रखें। अलमारी दक्षिण भाग में रखें।
8. मंदिर के बहुमूल्य उपकरण एवं भण्डार दक्षिण पश्चिम अथवा नैऋत्य भाग में रखें।

तलघर -

1. तलघर अस्त्यन्त आवश्यक होने पर ही बनाना चाहिये।
2. तलघर बनाने से यदि बचा जा सकते तो बचना चाहिये।
3. तलगृह केवल ईशान दिशा में बनावें यदि दीर्घाकार बनाना हो तो उत्तर या पूर्व तक बनावें।
4. किसी भी स्थिति में आग्नेय, दक्षिण, नैऋत्य, पश्चिम वायव्य एवं मध्य भाग में तलघर न बनावें।
5. तलघर का आकार आयताकार या वर्गाकार होना चाहिये।
6. कोई भी तलघर वेदी के नीचे नहीं बनाना चाहिये।
7. किसी भी स्थिति में पूरे जिनालय के नीचे तलघर नहीं बनाना चाहिये।
8. तलघर में उत्तरने की सीढ़ियाँ का उत्तर दक्षिण से उत्तर अथवा पश्चिम से पूर्व होना चाहिये।
9. दक्षिणी दीवाल की तरफ से सीढ़ियाँ बनाना चाहिये।
10. मंदिर के प्रमुख प्रवेश के नीचे तलघर नहीं होना चाहिये।
11. साधु/श्रावकों का ध्यान स्थिर हो सके अतः तलघर में प्रकाश और वायु की समुचित व्यवस्था होना चाहिये।

रंग संयोजना -

1. मंदिर के भीतर ज्यादा गाढ़े रंगों का प्रयोग कदापि नहीं करना चाहिये।
2. काला, गहरा, चाकलेटी, गहरा नीला गहरा ब्राउन गहरा हरा एवं गहरा स्लेटी रंग का कहीं भी उपयोग न करें।
3. गुलाबी, आसमानी, सफेद पीला के सरिया, हरा आदि रंगों का यथार्थता प्रयोग कर सकते हैं।

वास्तु विज्ञान

4. नीचे गाढ़ा ऊपर फीके रंग का संयोजन कर सकते हैं।
5. छत का रंग सफेद अथवा एकदम फीका होना चाहिये।
6. मंदिर की शिखर का रंग सफेद ही होना चाहिये।
7. लाल रंग का प्रयोग दरवाजों पर न करें।
8. नेत्रों को दुखदायक एवं अरुचिकर रंग नहीं होना चाहिये।

सीढ़ियाँ/सोपान -

1. सीढ़ियों का आकार वर्गाकार या आयताकार होना चाहिये।
2. गोलाकार या त्रिकोण सीढ़ियाँ नहीं बनाना चाहिये।
3. सीढ़ियाँ ईशान, पूर्व, उत्तर एवं मध्य में नहीं बनाना चाहिये।
4. सीढ़ियाँ बनाने के लिए दक्षिण एवं नैऋत्य दिशा श्रेष्ठ होती है।
5. पश्चिम, आग्नेय तथा वायव्य में सीढ़ियाँ बनाई जा सकती हैं।
6. सीढ़ियाँ का चढ़ाव पश्चिम अथवा उत्तर से दक्षिण की तरफ होना चाहिए।
7. सीढ़ियाँ के नीचे कोई महत्वपूर्ण कार्य न करें।
8. कोई वेदी न बनावें।
9. सीढ़ियों के ऊपर छत या छपरी अवश्य होना चाहिये जिसका उत्तर उत्तर या पूर्व में होना चाहिये।
10. मंदिर की प्रदक्षिणा देती हुई सीढ़ियाँ न बनावें।
11. सीढ़ियों के नीचे शास्त्र पाठन, जाप पूजन कदापि न करें।
12. ऊपरी मंजिल की एवं तलघर की सीढ़ियाँ एक ही स्थान से न बनावें।
13. जर्जर, हिलती हुई एवं जोड़तोड़ कर बनाई गई सीढ़ियाँ नहीं होना चाहिये।
14. सीढ़ियों का प्रदक्षिणा क्रम घड़ी की सुई की तरह होना चाहिए।
15. सीढ़ियों की संख्या विषम होना चाहिये।

पुष्प वाटिका एवं वृक्ष -

1. ऊचे वृक्ष मंदिर के दक्षिण एवं नैऋत्य भाग में ही लगावें।
2. इन वृक्षों की छाया प्रातः 9 बजे से दोपहर तीन बजे के मध्य मंदिर पर नहीं पड़ना चाहिये।

3. पूर्ण बाटिका मंदिर के उत्तर, पूर्व या ईशान दिशा में लगाना चाहिये।
4. आग्नेय दक्षिण एवं नैऋत्य में पूर्ण बाटिका नहीं लगाना चाहिये।
5. मंदिर में दूध वाले वृक्ष नहीं लगाना चाहिये।
6. मंदिर परिसर में कंटीले एवं फलदार वृक्ष न लगावें। नारियल का वृक्ष लगा सकते हैं।

मंदिर का परकोटा -

1. परकोटा का आकार वर्गाकार या आयताकार होना चाहिये।
2. परकोटे की दीवाल मुख्य मंदिर की दीवाल से सटाकर न बनावें।
3. परकोटा एवं मंदिर के मध्य पर्याप्त अन्तर होना चाहिये।
4. मंदिर के परकोटे की ऊँचाई और मोटाई दक्षिण और पश्चिम में ज्यादा और पूर्व और उत्तर में कम होना चाहिये।
5. नैऋत्य का परकोटा सबसे ऊँचा और ईशान कोण में सबसे नीचा होना चाहिए।
6. यदि उत्तर या पूर्व में महाद्वार नहीं है और भगवान की दृष्टि उत्तर या पूर्व में हो तो लघुद्वार बना कर दोष का निराकरण करना चाहिये।
7. परकोटा निर्माण में दक्षिण में उत्तर से कम जगह खाली छोड़े। दक्षिणी भाग में कम से कम जगह खाली छोड़े। परिक्रमा के लिये 5 फुट जगह छोड़ सकते हैं।
8. परकोटा पर सफेद रंग से पुताई करें। काला रंग न करें। उत्साहपूर्वक रंग लगाये जा सकते हैं। कथा एवं लाल रंग लगा सकते हैं।

कुआं -

1. मंदिर के ईशान, पूर्व उत्तर दिशा में कुआं बनाना चाहिये।
2. कुआं ठीक ईशान, पूर्व या उत्तर नहीं होना चाहिये। उत्तर से ईशान के मध्य ईशान से पूर्व के मध्य कुआं होना चाहिये।
3. मंदिर के मुख्य द्वार के ठीक सामने कुआं एवं गहा नहीं होना चाहिए।
4. नलकूप खुदवाने के लिए भी यही दिशा श्रेष्ठ है।

5. नलकूप में यह ध्यान रखें कि जल छानने के उपरान्त जीवानी पुनः जल में डाली जा सके।

पानी की टंकी -

1. मंदिर परिसर/अतिथि भवन में ऊँचे स्थान पर पानी की टंकी बनाना हो तो नैऋत्य कोण में बनाना चाहिये।
2. भूमिगत जल टंकी बनाना हो तो इसे ईशान, उत्तर और पूर्व में बनावें।
3. भूमिगत टंकी इस प्रकार बनावें कि प्रवेश मार्ग उसके ऊपर न हो।
4. किसी भी स्थिति में पानी की टंकी आग्नेय में न बनावें।
5. ऊँचे स्थान पर पानी टंकी दक्षिण दिशा में बना सकते हैं।
6. पानी की टंकी का मंदिर की शिखर से स्पर्श नहीं होना चाहिए।
7. विद्युत मीटर स्विच बोर्ड तथा मेन स्विच मंदिर की आग्नेय दिशा में लगाना चाहिये। आग्नेय में असुविधा हो तो, वायव्य में भी लगा सकते हैं।

पंचकल्याणक पाण्डाल/मण्डप -

1. मण्डप की भूमि बहुत पथरीली और खड़े दांते वाली नहीं होना चाहिए।
2. सर्पवामी तथा अन्य क्षुद्र कीटाणुओं के बिलों का स्थान न हो।
3. मण्डप भूमि नेत्रों को एवं मन को प्रिय लगने वाली हो।
4. मण्डप की लम्बाई चौड़ाई से डेढ़ गुनी होना चाहिये।
5. मण्डप का मुख्य द्वार पूर्व या उत्तर में होना चाहिए।
6. वेदी समचौरस बनाना चाहिये। यदि पात्रों की संख्या अधिक हो तो वेदी की लम्बाई चौड़ाई से डेढ़ गुनी बनाना चाहिये।
7. वेदी पर सिर्फ प्रतिष्ठा की क्रियायें पूजा जप और होम ही होना चाहिये अन्य कार्य नहीं।
8. सांस्कृतिक कार्यक्रम के लिये अलग मंच बनाना चाहिये।
9. मुख्य वेदी चौकोर, पक्की एवं ठोस होना चाहिये।
10. वेदी की ऊँचाई 2.5 से 3 फुट तक होना चाहिये।
11. चारों ओर परिक्रमा का स्थान होना चाहिये।

12. वेदी में तीन कटनी बनाना चाहिये।
13. सबसे नीचे की कटनी 2 फुट ऊँची, एक फुट चौड़ी दूसरी कटनी एक फुट ऊँची एक फुट चौड़ी तीसरी कटनी एक फुट ऊँची एवं 2 फुट चौड़ी बनाना चाहिये। इस पर बीच में सिंहासन एवं विमान रखने के लिए एक फुट ऊँचा एवं तीन फुट लम्बा चबूतरा बनावें जिस पर पूर्व प्रतिष्ठित मूल नायक प्रतिमा विराजमान करना चाहिये।
14. मुख्य वेदी के सामने से दो फुट स्थान छोड़कर यागमण्डल की वेदी पक्की डेढ़ फुट ऊँची एवं 12×12 फुट लम्बी चौड़ी बनाना चाहिए।
15. यागमण्डल वेदी ठोस होना चाहिए।
16. मुख्य वेदी और यागमण्डल वेदी के बांधी ओर तीन हवन कुण्ड तीन कटनी बाले बनाना चाहिए।
17. चौकोर कुण्ड बीच में, त्रिकोण कुण्ड नीचे और गोलकुण्ड ऊपर बनाना चाहिए।
18. मण्डप के सामने मंगल ध्वज का चबूतरा गोल तीन कटनी बाला बनाना चाहिए।
19. कटनी एक फुट ऊँची एवं एक फुट चौड़ी बनाना चाहिये। बीच में पाइप लगाने का स्थान रहेगा।
20. ध्वज दण्ड की ऊँचाई पाण्डाल से कम से कम डेढ़ गुनी और अधिकतम दुगनी होना चाहिये।
21. मुख्य वेदी के दाहिनी ओर माता का महल एवं गर्भगृह होना चाहिए।
22. गर्भगृह 10×6 फुट का बनाना चाहिये।
23. पाण्डुक शिला मुख्य वेदी से उत्तर दिशा में तीन कटनी की कलात्मक 13 से 15 फुट ऊँची बनाना चाहिये। 4 फुट ऊँचा एवं 14×14 फुट चौकोर उसके ऊपर बीचों-बीच 3 फुट ऊँचा 10 \times 10 फुट का गोल, इसके बीचों-बीच 3 फुट ऊँचा 6×6 फुट का गोल, इसके बीचों-बीच 3 फुट ऊँचा 2×2 फुट का गोल बनाये इस प्रकार 13 फुट ऊँची पाण्डुक शिला बनेगी।

24. मुख्य वेदी के पीछे टीन के कमरे बनावें जिसमें जपगृह, स्टोर, सामग्री बनाने का स्थान एवं स्त्र बदलने का स्थान बनाना चाहिये।
25. प्रतिष्ठाचार्य, पुजारी और संगीतकार का निवास मुख्य पाण्डाल के पास में ही होना चाहिए।
26. पाण्डाल के तीन तरफ द्वार रखें।
27. वेदी जल अवरोधक बनाना चाहिये।
28. हवन कुण्ड 15 इंच गहरे 15 इंच लंबे-चौड़े होना चाहिये।
29. दीक्षा वन वेदी की पूर्व दिशा में बनाना चाहिये।
30. आहार गृह वेदी से दक्षिण दिशा में बनाना चाहिए।
31. समवशरण वेदी से पूर्व दिशा में बनाना चाहिये।
32. ध्वजारोहण, पंचकल्याणक क्रिया आरम्भ करने के 28 दिन, 21 दिन, 14 दिन, 9 दिन या 7 दिन पूर्व करना चाहिये।
33. दूसरी विधि ध्वजारोहण करने के लिये तीन कटनी सहित बलयाकार एक वेदी बनावे प्रथम कटनी का व्यास 55 इंच और ऊँचाई 13 इंच हो दूसरी कटनी का व्यास 41 इंच और ऊँचाई 11 इंच हो तीसरी कटनी का व्यास 25 इंच और ऊँचाई 9 इंच हो वेदी की कुल ऊँचाई 33 इंच हो। कटनी की ऊँचाई समान भी कर सकते हैं।

मान स्तम्भ -

1. मंदिर के द्वार के ठीक सामने समसूत्र में मानस्तंभ बनाना चाहिये।
2. मान स्तम्भ की ऊँचाई का मान मूल नायक प्रतिमा के मान से बारह गुण होना चाहिये।
3. मान स्तम्भ बृत्ताकार, चतुरस्र अथवा अष्टास्र होना चाहिये।
4. मान स्तम्भ के ऊपर मंदिर नुमा गुमटी में एक ही नाप की चार अरिहंत प्रतिमा विराजमान करना चाहिए।
5. चारों जिन प्रतिमायें या एक ही पत्थर में निर्मित हो या अलग-अलग हो।
6. मान स्तम्भ में निर्मित जिनालय वर्गाकार ही होना चाहिये।
7. मान स्तम्भ के ऊपर शिखर तथा कलश का निर्माण करें।

8. मान स्तंभ के नीचे भाग में तीनु कटनी बनाना चाहिये।
9. प्रथम कटनी में माता के सोलह स्वप्न स्थापित करें।
10. द्वितीय कटनी में अष्ट प्रतिहार्यों का चित्रण करें।
11. तृतीय कटनी के चारों ओर चार जिन प्रतिमाओं की स्थापना करें।
12. मान स्तंभ पर स्वर्ण कलश आरोहित कर ध्वजारोहण करें।
13. मान स्तंभ की प्रतिमाओं के पास अष्ट मंगल द्रव्यों की स्थापना करें।
14. मान स्तंभ के नीचे के भाग की जिन प्रतिमा तथा मूल नायक प्रतिमा की दृष्टि एकसूत्र में होना चाहिये।
15. मान स्तंभ की प्रतिमाओं का दैनिक अभिषेक आवश्यक नहीं है। फिर भी यदि वार्षिक रूप से समारोहपूर्वक अभिषेक किया जावे तो उत्तम है।
16. मान स्तंभ का निर्माण मंदिर से कुछ दूरी पर करे ताकि हृषि वेध न हों।
17. मान स्तंभ के चारों ओर लगभग एक गज ऊँचा परकोटा बनावें तथा चारों दिशाओं के मध्य में शोभायुक्त द्वार बनावे। इसे सुसज्जित करें।
18. मानस्तंभ के आसपास पूर्ण स्वच्छता रखें।
19. मान स्तंभ की दूरी का आगम में उल्लेख प्राप्त नहीं हुआ किन्तु मंदिर और मान स्तंभ की दूरी 25 फुट होना चाहिये तथा स्थल के अनुसार संयोजन करना चाहिये।

जीर्णोद्धार -

1. जो मंदिर/भवन प्राचीन होकर ध्वस्त होने की स्थिति में हो जिसके स्कन्ध व जोड़ों में बद्ध क्षमता अति न्यून हो गई हो। भित्तियों में दरारें व छिद्र हो गये हो। द्वार व खिड़कियां अस्त-व्यस्त हो चुकी हो तथा शीत, उण्णा, वायु एवं वर्षा आदि का प्रकोप नहीं रुक पा रहा हो ऐसी स्थिति में जीर्णोद्धार करें।
2. मंदिर के जो अवयव अति जीर्ण हो गये हो जीर्णोद्धार से ठीक न हो पा रहे हों ऐसे भाग को ध्वस्त कर ही जीर्णोद्धार करें लेकिन उसकी पौराणिकता जीवित रखते हुये ही जीर्णोद्धार करें।

3. ✓ जो मंदिर निर्माण पूर्व में जिस माप आकृति का बना हो उसी माप के अनुसार जीर्णोद्धार करना चाहिये।
4. घर अथवा मंदिर का जीर्णोद्धार करना हो तो इनके मुख्य द्वार को चलायमान नहीं करना चाहिए। अर्थात् मुख्य द्वार जिस दिशा में, जिस स्थान पर, जिस माप का हो उसी प्रकार, उसी दिशा, उसी स्थान एवं उसी माप का रखना चाहिए।
5. ✓ यदि मंदिर अच्छी स्थिति में रहने के बाद भी उसे जीर्णोद्धार अथवा नवीनीकरण के नाम पर गिराया अथवा विस्थापित किया जावे तो उसके भीषण दुष्परिणाम होते हैं।
6. प्राकृतिक आपदा, बाढ़, भूकम्प, अग्नि एवं बिजली से यदि मंदिर को क्षति पहुँचती है तो बृहद शांति मंत्र का सवा लाख जाप, शांति विधान, शांति हवन एवं शांति भवित करके जीर्णोद्धार करना चाहिए। सभी समाज रस त्याग कर यामोकार महामंत्र की संकल्प पूर्वक जीर्णोद्धार होने तक जाप करें।
7. मंदिर, शिखर, दीवार, छत एवं फर्झा आदि में क्षरण होने लगे, चूना/सीमेंट गिरने लगे, गड्ढे हो जावें, जाले लग जावें, त्रस जीवों का आवास होने लगे, कूड़ा इकट्ठा होने लगे, दीवारों में छिद्र हो जावें, दरार पड़ जावे, शिखर तथा छत पर काई या बनस्पति होने लगे अर्थात् जीर्णोद्धार या सफेदी न कराइ जावे तो समाज को पीड़िकरक है। यह महादेव माना जाता है यदि अव्यक्त जीर्ण प्रासाद मिट्टी का हो तो गिराकर फिर बनावें। पाशाण का हो तो तीन हाथ तक और लकड़ी का हो तो आधे पुरुष के मान तक ऊँचा रहा हो तो चलायमान करें। इससे अधिक ऊँचाई में रहा हो तो चलायमान न करें।
8. ✓ यदि अव्यक्त जीर्ण प्रासाद मिट्टी का हो तो गिराकर फिर बनावें। पाशाण की हो तो तीन हाथ तक और लकड़ी का हो तो आधे पुरुष के मान तक ऊँचा रहा हो तो चलायमान करें। इससे अधिक ऊँचाई में रहा हो तो चलायमान न करें।
9. प्राचीन महापुरुषों ने जो वास्तु स्थापित किया है उसका यदि जीर्णोद्धार किया जाय तो जैसा पहले हो वैसा ही करना चाहिए। जीर्ण वास्तु यदि अंगहीन न हुआ हो तो ऐसे वास्तु को चलायमान करने से बड़ा भयंकर भय उत्पन्न होता है।

- ✓ 10. जीर्णोद्धार के आरंभ के समय सोना अथवा चौंदी का हाथी या वृषभ बनावें उसी हाथी के दाँत या वृषभ के सींग से वास्तु को गिरावें।
11. जीर्णोद्धार हेतु वास्तु गिराने का कार्य ईशान दिशा से प्रारंभ करना चाहिए तथा ईशान से बायब्य या आग्नेय की ओर गिराते हुए नैकृत्य दिशा का भाग सबसे अंत में गिराना चाहिए।
12. गिराये हुए मलवे को उत्तर ईशान तथा पूर्व में एकत्रित नहीं करें, दक्षिण नैकृत्य अथवा पश्चिम में करें।
- ✓ 13. जीर्णोद्धार हेतु गिराये गये, हुए स्वयं गिरे हुये देवालय व मकान आदि का पापाण, लकड़ी, इंट, चूना एवं मिट्टी आदि कोई भी पदार्थ नवीन बन रहे देवालय एवं मकान आदि में उपयोग में नहीं लाने चाहिए। यदि उपयोग करते हैं तो नवीन देवालय में पूजा प्रतिष्ठा आदि भली रीति सम्पन्न नहीं होते तथा शांति आदि का अभाव रहता है। यदि घर में लगाते हैं तो गृहस्वामी उस घर में लंबे समय तक निवास नहीं कर सकता।
14. जीर्णोद्धार के लिये किसी अन्य वास्तु का गिरा हुआ इंट, चूना, गारा, पापाण काप्ट आदि का प्रयोग न करें।
15. मंदिर यदि अल्प द्रव्य से निर्मित हो तो उससे अधिक द्रव्य की वास्तु का निर्माण करें। यदि वास्तु मिट्टी का हो तो काष्ट का बनावे, काष्ट का हो तो पापाण का, पापाण का हो तो धातु का, धातु का हो तो रत्न का बनावे।
16. जीर्णोद्धार के लिये वेदी से प्रतिमा पूर्ण सावधानी एवं विधि विधानपूर्वक उठाना चाहिये।
17. मूल नायक विशालकाय हो तो शिखर आदि के जीर्णोद्धार के लिये मूल नायक के नाप की बड़ी काष्ट की पेटी बनाकर पूर्णतः आच्छादित करना चाहिये।
18. चातुर्मास में मूलनायक को विस्थापित नहीं करना चाहिये।
19. जीर्णोद्धार का कार्य भी चातुर्मास में न करें व्योगिक अत्यन्त सूक्ष्म जीवों की विराधना होती है।

20. यदि शिखर को ऊँचा करना है तो पुराने शिखर को अन्दर लेते हुये दूसरा बड़ा शिखर बनाना चाहिए।
21. मंदिर वेदी, शिखर की शोभा सुन्दरता और सजावट को ध्यान में रखकर तोड़फोड़ नहीं करना चाहिये।
22. पूर्व सूत्र के प्रमाण से यदि कम नाप लिया जायगा तो हानिकारक होगा और यदि दो यदि दो दिया जायगा तो स्वजनों का विनाश होगा।
23. जीर्णोद्धार करते समय यदि आय कम हो जायेगी तो पुत्रादि का नाश, व्ययहीन हो जाय तो, भोग विनाश स्तंभ वेद से अत्यन्त दुख एवं मर्म वेद से बंध नाश होता है।
- ✓ 24. पुराने मंदिर का जीर्णोद्धार कराने से नवीन मंदिर बनावाने के पुण्य से आठ गुना अधिक पुण्य मिलता है।
25. जीर्णोद्धार का कार्य भगवान के समक्ष समयावधि का संकल्प लेकर करें।
- ✓ 26. जीर्णोद्धार हेतु मूर्ति उत्थापन विधि - शुभ मुहूर्त में विदिषा जाय और शान्तिमण्डल विधान कर जिस वेदी का जीर्णोद्धार करना हो वहाँ पंच लोग हाथों में श्रीफल लेकर खड़े हों और भवितव्यक संकल्प करें कि "हम शान्तिनाथ जिनेन्द्र (मूल नायक का नाम ले) सहित सर्व जिनेन्द्र देवों को यहाँ से उत्थापन कर अमृक स्थान पर विराजमान करना चाहते हैं। जिस प्रकार पूजा-अर्चना यहाँ करते थे वैसी ही वहाँ करें और इतने (समय की मर्यादा) समय के भीतर विधिपूर्वक यथास्थान विराजमान कर दें। इतने समय तक हम अमृक रस या अमृक वस्तु नहीं खाएंगे। भगवान के भवत यहाँ जो भी देवगण हैं, वे इस शुभ कार्य में हमारा सहयोग करें। अज्ञानतावश हमसे कोई अवज्ञा या भूल हो रही हो तो क्षमा करते हुए शान्तिभाव धारण करें।" इस प्रकार संकल्प पर श्रीजी को श्रीफल चढ़ाकर भवित से गदगद होते हुए अष्टाङ्ग नमस्कार करें। पश्चात् मंगल आरती करें और अर्ध चढ़ावें तथा पामोकार मन्त्र के उच्चारण और जयध्वनि के साथ (शुभ लग्न में) श्री जी का उत्थापन कर यथास्थान विराजमान कर पुनः अर्ध चढ़ाकर नमस्कार करें।

सन्दर्भ ग्रन्थ - सूची

(1)	प्रासाद मंडन	-	सूत्रधार मंडन
(2)	वास्तु प्रकरण	-	ठक्कुर फेर्ल
(3)	प्रतिष्ठापाठ	-	जयसेनाचार्य
(4)	बत्थुविज्जा (गृह)	-	आ. विशुद्धमति
(5)	बत्थुविज्जा (मंदिर)	-	आ. विशुद्धमति
(6)	वास्तु विज्ञान परिचय	-	आ. विशुद्धमति
(7)	वास्तुचिन्तामणि	-	आ. देवनन्दी
(8)	देवशिल्प	-	आ. देवनन्दी
(9)	वास्तु रत्नाकर	-	श्री विन्ध्येश्वरी प्रसाद द्विवेदी
(10)	वास्तु रत्नावली	-	श्री जीवननाथ झा दैवज्ञ
(11)	प्रतिष्ठा रत्नाकर	-	पं. गुलाबचन्द्र पुष्प
(12)	पुष्पांजलि	-	पं. गुलाबचन्द्र पुष्प
(13)	वास्तुशास्त्र	-	ईश्वरलाल पुजारी
(14)	वास्तुशास्त्र	-	शशिमोहन वहल

जैनं चैत्यालयं चैत्यमुतनिर्मापयन्-शुभम्।

वाञ्छन् स्वस्य नृपादेश्च, वास्तुशास्त्रं न उंघयेत्॥

अपना, राजा का और प्रजा का कल्याण चाहने वाले को जिन मन्दिर, जिन प्रतिमा और उनके उपकरण आदि शिल्पशास्त्रानुसार ही बनाना चाहिए। शिल्पशास्त्र के नियमों का किंचित् भी उल्लंघन नहीं करना चाहिए।

शिल्पस्मृतिवास्तु विद्यायाम्



प रि च य



पं. सनत कुमार जैन

पं. विनोद कुमार जैन

पिता

- प्रतिष्ठाचार्य पं. कल्पनाथ जी

माता

- श्रीमती शाहिला

जन्म

- 04.01.1957, 06.09.1959 (रजवांस)

शिक्षा

- आयुर्वेदरत्न, ज्ञानरत्न

धार्मिक शिक्षा

- स्वाध्याय

अनुवाद/संपादन

- (1) तत्वार्थसूत्र एवं शहस्रनाम (हिन्दी ग्रन्थ सूत्र में)
- (2) श्री जिनेन्द्र पूजा पाठ (आर्थसहित जिनवाणी)
- (3) श्री सिद्ध चक्र विधान अर्थ सहित (पुरस्कृत)
- (4) आत्मशोधन, आलोचना एवं प्रतिक्रमण
- (5) वास्तुविज्ञान (गृह, देवालय एवं प्रतिमा विज्ञान)

सम्पादक

- (1) जिनभवित
- (2) पंच, ब्रह्म विज्ञान

सलाहकार सम्पादक

- संस्कार सागर (मासिक)

सह सम्पादक-

- (1) पुष्पाञ्जलि (पं. गुलाबचन्द्र अभिनंदन ग्रन्थ)
- (2) मनीषा (प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश अभिनंदन ग्रन्थ)

कार्यकारिणी सदस्य

- अ.भा. वर्षीय दि. जैन शास्त्री परिषद

संरक्षक

- जैन सेवा संघ, रजवांस

आगामी कृतियाँ

- (1) तत्वार्थ सूत्र सार्थ (पारिभाषिक)
- (2) सामुद्रिक शास्त्र सार्थ
- (3) वर्तमान चौबीसी विधान सार्थ

उपाधियाँ

- वाणी भूषण, ज्ञानवारिधी, प्रतिष्ठारत्न, विद्याभूषण, संनीत समाट, संगीतरत्न, प्रतिष्ठातिलक एवं विद्वतरत्न

पुरस्कार

- अ.भा. दि. जैन शास्त्री परिषद द्वारा - श्री अमरचन्द्र पट्टाडिया स्मृति पुरस्कार, कोलकाता

सम्प्रति

- स्वाध्याय. लेखन. विधान एवं प्रतिष्ठादि।